

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

KRi-83

KRi-03

बुन्देल-वैभव-ग्रंथमाला का द्वितीय पुष्प



अथवा

श्रीमद्भगवद्गीता का सरल छंदोबद्ध अनुवाद

(सचित्र, सटिप्पण और सजिल्द)

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

माता तुम्हीं और पिता तुम्हीं हो, भ्राता तुम्हीं और सखा तुम्हीं हो;
विद्या तुम्हीं हो, धन भी तुम्हीं हो, देवेश मेरे सब हो तुम्हीं हो।

'शङ्कर'

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

प्रकाशक
श्री रामेश्वर प्रसाद द्विवेदी 'रमेश'
बुन्देल-वैभव-ग्रंथमाला
टीकमगढ़ (बुन्देलखण्ड)

द्वितीयावृत्ति
१०००

व्यास पूर्णिमा
सं० १९९२ वि०
(मङ्गलवार ताः १६/७/३५)

दाम १।।)

मुद्रक
विशेश्वर प्रसाद सक्सेना
वीरसिंह देव प्रिंटिंग प्रेस,
टीकमगढ़ (बुन्देलखण्ड)

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

10.7.09

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

गीता-गौरव



श्रीमन्त पण्डित गुरुनाथ वेङ्कटेशबेवूर
बी. ए., सी. आई. ई., आई. सी. एस., जे. पी.,
डाइरेक्टर जनरल आफ् पोस्टस् एण्ड टेलीग्राफस्
भारतवर्ष, बर्मा, अदन और सीलोन

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

समर्पण

श्री कृष्ण भगवान् के अनन्य भक्त

उदारमना, विद्वद्वर

श्रीमन्त पण्डित गुरुनाथ वेङ्कटेश बेवूर महोदय

बी० ए०, सी० आई० ई०, आई० सी० एस०, जे० पी०

डाइरेक्टर जनरल

आफ्

पोस्टस् एण्ड टेलीग्राफस्

भारतवर्ष बरमा, अदन और सीलोन

महोदय !

एक एक शब्द-बिन्दु में है दिव्य ज्ञान-सिंधु,
गीता-गुण-गरिमा का, पाया किसने है तत्व;
विश्व-प्रेम, विश्व-शांति, ही के उपदेश उच्च,
देता समता से यही, ऐसा जिसका गुरुत्व ।
गीता-मय-जीवन से, बनते हैं दोनों लोक,
गीता अनुशीलन से, होते नर बोधिसत्व;
उस ही का रूप एक, 'गीता-गौरव' है भेंट,
'शङ्कर' स्वीकार कर, दीजिए इसे महत्व ।

गौरीशङ्कर

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

विषय-सूची

विषय	पृष्ठाङ्क
प्राक्कथन	१६-२२
भूमिका	२५-६४
प्रथम संस्करण की भूमिका	२५-२६
द्वितीय संस्करण की भूमिका	२७-२८
अपनी बात	२८-३०
ग्रंथ का नाम 'गीता-गौरव'	३१
अनुवाद	३१
कठिन शब्दों का अर्थ	३१
गीता के जानने योग्य विषय	३२
गीता-विषयक चित्र	३२
गीता-सार्वभौम धर्म ग्रन्थ है	३३-३४
जन्म-मृत्यु और आत्मा का विवेक	३५
इन्द्रियों की विषयों में आसक्ति	३६
सुख और दुःख का विवेचन	३६-३८
योग और सांख्य	३६
कर्म-योग	४०-४२
निष्काम कर्म	४३-४४
भक्ति योग	४४-४५
ज्ञान-योग	४६-४७
धर्म और अधर्म का विवेचन	४८

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

विषय	पृष्ठाङ्क
अवतार	४९
यज्ञ	५०
त्याग से परमात्मा की प्राप्ति	५१-५३
गीता-ज्ञान का सार	५४-५५
गीता का विश्व को सन्देश	५६-५८
गीता के जिज्ञासुओं से महाभारत पढ़ने का अनुरोध	५९
गीता-महात्म्य का सार	६०
गीताकार कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास	६१
कृतज्ञता ज्ञापन	६२-६३
महाभारत का संक्षिप्त पूर्व वृत्तान्त	(६७-७६)
महाभारत	६७-७०
पाण्डवों का राजसूय यज्ञ	७१
द्यूत-क्रीड़ा	७१
द्रौपदी का दुर्योधन की सभा में बल पूर्वक पकड़ कर आना	७१
दूसरी बार द्यूत-क्रीड़ा	७२
उत्तरा-अभिमन्यु विवाह	७२
पाण्डवों का दूत भेजना	७३
पाण्डवों का कौरवों को युद्ध निमंत्रण	७४
पाण्डवों की सेना और सेनापति	७४
कौरवों की सेना और सेनापति	७५
कुरुक्षेत्र में युद्ध की तैयारी	७५
युद्धारम्भ	७५
संजय को दिव्य दृष्टि का वरदान	७६

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

विषय — पृष्ठाङ्क

पहिला अध्याय (अर्जुन विषाद योग)— (७६-६१)

—धृतराष्ट्र का संजय से प्रश्न — १ पद्य

संजय का उत्तर जिस में दोनों सेनाओं का तुलनात्मक वर्णन गुरु द्रोणाचार्य से दुर्योधन ने कहा और भीष्म की रक्षा के लिए उनसे आग्रह किया — २-११ „

युद्धारम्भ के लिए दोनों सेनाओं में शंखध्वनि — १२-१६ „

युद्ध निमित्त एकत्रित वीरों को देखने के लिए युद्धस्थल में रथ ले चलने के लिए अर्जुन की श्री कृष्ण भगवान से प्रार्थना — २०-२३ „

वीरों को दिखलाने के लिए श्रीकृष्ण भगवान का अर्जुन के रथ को ले चलना और अर्जुन को भाई, मामा, श्वसुर, साले आदि को देखकर विषाद उत्पन्न होना तथा धनुष बाण छोड़कर पीछे की ओररथ पर बैठ जाना — २४-४७ „

दूसरा अध्याय (सांख्य योग)— (६२-११०)

श्री कृष्ण का अर्जुन को युद्ध करने के लिए समझाना — १-३ पद्य

अर्जुन का शिष्य भाव पूर्ण उत्तर और भ्रम निवारण के लिए प्रार्थना — ४-८ „

संजय का धृतराष्ट्र को सम्बोधन — ६-१० „

आत्मा का अशोचत्व ... — ११-१३ „

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

विषय	पृष्टाङ्क
देह और सुख दुःख की अनित्यता	१४–१५ पद्य
सदसद्विवेक और आत्मा के नित्यत्वादि स्वरूप कथन से उस के अशोचत्व का समर्थन	१६–२५ ,,
आत्मा के अनित्यत्व पक्षवालों को उत्तर	२६–२७ ,,
सांख्य शास्त्रानुसार व्यक्त भूतों का अनित्यत्व और अशोचत्व	२८ ,,
आत्मा की दुर्ज्ञेयता जानते हुए भी सत्य ज्ञान प्राप्त करके शोक को त्यागने का आग्रह	२९–३० ,,
क्षत्रिय-धर्म के अनुसार युद्ध की आवश्यकता	३१–३८ ,,
साँख्य मार्गानुसार विषय प्रतिपादन की समाप्ति और कर्मयोग के प्रतिपादन का प्रारम्भ	
कर्मयोग का थोड़ा करना भी भय दूर करता है	४० ,,
व्यवसायात्मक बुद्धि की स्थिरता	४१ ,,
कर्म काण्ड के अनुयायी मीमांसकों की अस्थिर बुद्धि का वर्णन	४२–४४ ,,
स्थिर और योगस्थ बुद्धि से कर्मों में रत होने का उपदेश	४५–४६ ,,
कर्मयोग का लक्षण, अन्य कर्मों से कर्मयोग की श्रेष्ठता, कर्मयोग से मोक्ष प्राप्ति	४७–५३ ,,
प्रज्ञ पुरुष के लक्षण विषयासक्ति से काम आदि की उत्पत्ति	५४–७० ,,
ब्राह्मी स्थिति और उस की स्तुति	७१–७२ ,,

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

विषय पृष्टाङ्क

तीसरा अध्याय (कर्मयोग)— (१११-१२१)

अर्जुन का कर्मों को करने या न करने के लिए प्रश्न १-२ पद्य

कर्मयोग की श्रेष्ठता सिद्ध कर के कर्म करने का निश्चित उपदेश ३-८ „

आसक्ति त्यागकर मीमांसकों को यज्ञार्थ कर्म करने का उपदेश यज्ञ-चक्र का अनादित्व और जगत के धारणार्थ उस की आवश्यकता ९-१६ „

निस्वार्थ ज्ञानी को निष्काम कर्म प्रेरणा, फलासक्ति को त्याग कर्म करने की प्रेरणा १७-१९ „

जनक आदि नृपों का उदाहरण, लोक-संग्रह का महत्व और स्वयम् श्री कृष्ण का दृष्टांत २०-२४ „

ज्ञानी और अज्ञानी के कर्मों में भेद, ज्ञानी द्वारा अज्ञानियों को निष्काम कर्म का आदर्श उपदेश २५-२९ „

ज्ञानी पुरुष के समान ईश्वरार्पण बुद्धि से अर्जुन को युद्ध करने के लिए उपदेश ३० „

श्रीकृष्ण भगवान के इस उपदेशानुसार श्रद्धा पूर्वक आचरण करने या न करने का फल ३१-३२ „

प्रकृति की प्रबलता और इन्द्रिय निग्रह ३३-३४ „

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

विषय	पृष्ठाङ्क
निष्काम कर्म भी स्वधर्म ही का करे, उस में यदि मृत्यु भी हो जाय तो वह भी कल्याण करने वाली है	३५ पद्य
काम ही मनुष्य को उस की इच्छा के विरुद्ध कर्म करने को प्रेरित करता है, इन्द्रिय-संयम से उस का नाश	३६-४१ ,,
इंद्रियों की श्रेष्ठता का क्रम और आत्म ज्ञान पूर्वक उन का संयम	४२-४३ ,,

चौथा अध्याय (ज्ञान-कर्म-सन्यास-योग)—(१२२-१३२)

कर्मयोग की सम्प्रदाय-परम्परा	१-३ ,,
अवतारों का वर्णन	४-८ ,,
पुनर्जन्म का अन्त और भगवत प्राप्ति के उपाय	९-१० ,,
अन्य रीति से भजने का फल, देवोपासना का फल	११-१२ ,,
भगवान के निर्लेप कर्मों के तत्वों को जानकर कर्म बन्धों का नाश और उसी प्रकार के कर्मों को करने का उपदेश	१३-१५ ,,
कर्म, अकर्म और विकर्म का भेद, अकर्म ही निःसङ्ग कर्म हैं वही सच्चा कर्म हैं उसी से कर्मबन्ध का नाश होता है	१६-२३ ,,
अनेक प्रकार के लाक्षणिक यज्ञों का वर्णन और ज्ञान-यज्ञ की श्रेष्ठता	२४-३३ ,,
ज्ञाता से ज्ञानोपदेश, ज्ञान से आत्मौपम्य दृष्टि और पाप पुण्य का नाश	३४-३७ ,,

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

विषय	पृष्ठाङ्क
ज्ञान-प्राप्ति के उपाय और फल और उन के उपायों के अभाव में नाश	३८--४० पद्य
कर्म योग और ज्ञान का पृथक पृथक उपयोग समझा कर दोनों के आश्रय से अर्जुन को युद्ध करने का उपदेश	४१--४२ ,,
पाँचवाँ अध्याय (सन्यास योग)—	(१३३-१४०)
यह प्रश्न कि सन्यास श्रेष्ठ है या कर्म योग इस पर श्रीकृष्ण भगवान का उत्तर कि मोक्षप्रद तो दोनों हैं पर कर्म योग श्रेष्ठ है	१-२ ,,
संकल्पों को छोड़ देने से कर्म योगी नित्य सन्यासी ही होता है और बिना कर्म के सन्यास भी सिद्ध नहीं होता इस लिए तत्वतः दोनों एक ही हैं	३--६ ,,
मन सदैव सन्यस्त रहता है और कर्म केवल इन्द्रियाँ किया करती हैं इसलिए कर्म योगी सदा अलिप्त शांत और मुक्त रहता है	७--१३ ,,
वास्तव में प्रकृति ही कर्त्ता और भोक्ता है किन्तु अज्ञान से आत्मा को तथा परमेश्वर को समझा जाता है	१४--१५ ,,
इस अज्ञान के नाश से, पुनर्जन्म से छुटकारा	१६--१७ ,,

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

विषय	पृष्टाङ्क
ब्रह्म ज्ञान से प्राप्त होने वाले समदर्शित्व का, स्थिर बुद्धि का और सुख दुःख की क्षमता का वर्णन	१८-२३ पद्य
सर्व भूत हितार्थ कर्म करते रहने पर भी कर्म योगी इसी लोक में सदैव ब्रह्मभूत समाधिस्थ और मुक्त है	२४-२८ ,,
परमेश्वर को यज्ञ-तप का भोक्ता और सब भूतों का मित्र जान लेने का फल	२९ ,,
छठा अध्याय (ध्यान योग)—	(१४१-१५२)
फलाशा छोड़ कर कर्तव्य करने वाला ही सच्चा सन्यासी और योगी है। सन्यासी का अर्थ निरग्नि और अक्रिय नहीं है	१-२ ,,
योगारूढ़ पुरुष के लक्षण	३-४ ,,
योग को सिद्ध करने के लिए आत्मा की स्वतंत्रता	५-६ ,,
जितात्मा योग युक्तों में भी सम बुद्धि की श्रेष्ठता	७-९ ,,
योग साधन के लिए आवश्यक आसन और आहार विहार का वर्णन	१०-१७ ,,
योगी और योग समाधि के आत्यन्तिक सुख का वर्णन	१८-२३ ,,
मन को धीरे धीरे समाधिस्थ शांत और आत्मनिष्ठ कैसे करना चाहिए	२४-२६ ,,

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

विषय पृष्ठाङ्क

योगी ही ब्रह्मभूत और अत्यंत सुखी है २७--२८ पद्य
प्राणिमात्र में योगी की आत्मौपम्य बुद्धि २९-३२ ,,
मन के निग्रह का विषय ३३--३६ ,,
योग भ्रष्ट पुरुष की गति का विषय और ध्यान योगी की महिमा ३७--४७ ,,

सातवाँ अध्याय (ज्ञान विज्ञान योग)— (१५३-१६०)

विज्ञान सहित ज्ञान का विषय १-७ पद्य
सम्पूर्ण पदार्थों में कारण रूप से भगवान् की व्यापकता का कथन ८-१२ ,,
आसुरी स्वभाव वालों की निन्दा और भगवद्भक्तों की प्रशंसा १३-१९ ,,
अन्य देवताओं की उपासना का विषय २०-२३ ,,
भगवान् के प्रभाव और स्वरूप को न जानने वालों की निन्दा और जानने वालों की महिमा २४-३० ,,

आठवाँ अध्याय (अक्षर ब्रह्म योग)— (१६१-१६८)

ब्रह्म, अध्यात्म, कर्म, अधिभूत, अधिदैव, अधियज्ञ, और अधिदेह की व्याख्या १--४ पद्य
अन्तकाल में भगवत्स्मरण से मुक्ति मिलती है अतः भगवान् का स्मरण करने का उपदेश ५-८ ,,
अन्तकाल में परमेश्वर का अर्थात् ॐ कार का समाधि पूर्वक ध्यान और उस का फल ९-१३ ,,
भगवान् का नित्य चिंतन करने से पुनर्जन्म-नाश, ब्रह्म लोकादि गतियाँ नित्य नहीं हैं १४-१६ ,,

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

विषय पृष्ठाङ्क

ब्रह्मा का दिन-रात, दिन के आरम्भ में अव्यक्त से सृष्टि की उत्पत्ति और रात्रि के प्रारम्भ में उसी में लय १७-१९ पद्य

इस अव्यक्त से भी परे का अव्यक्त और अक्षर पुरुष भक्ति से उसका ज्ञान और उसकी प्राप्ति से पुनर्जन्म का नाश २०-२२ ,,

देवयान और पितृयाण मार्ग, प्रथम पुनर्जन्म नाशक और दूसरा इसके विपरीत है २३-२६ ,,

इन मार्गों के तत्व को जानने वाले योगी को अत्युत्तम फल मिलता है अतः तदनुसार व्यवहार करने का उपदेश २७-२८ ,,

नवाँ अध्याय (राजविद्या राजगुह्य योग)— (१६९-१७७)

ज्ञान विज्ञान युक्त भक्ति मार्ग मोक्ष प्रद होने पर भी प्रत्यक्ष और सुलभ है, अतएव राज मार्ग है १-३ पद्य

परमेश्वर का अपार-योग-सामर्थ्य। प्राणिमात्र उस में रहकर भी उन में नहीं है और प्राणिमात्र भी उस में रह कर, नहीं हैं ४-६ ,,

मायात्मक प्रकृति के द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति और संहार, भूतों की उत्पत्ति और लय इतना करने पर भी वह निष्काम है, अतएव अलिप्त है ७-१० ,,

इसे बिना पहिचाने, मोह में फँस कर परमेश्वर की अवज्ञा करने वाले मनुष्य देह धारी मूर्ख और आसुरी हैं ११-१२ ,,

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

विषय	पृष्ठाङ्क
ज्ञान यज्ञ के द्वारा अनेक प्रकार से उपासना करने वाले दैवी हैं	१३-१५ पद्य
ईश्वर सर्वत्र है वही माता पिता, स्वामी और पोषक है और भले बुरे का कर्त्ता है	१६-१९ ,,
सकाम और निष्काम उपासना का फल	२०-२५ ,,
भक्ति हो तो परमेश्वर फूल की पँखुरी से भी संतुष्ट हो जाता है	२६ ,,
सब कर्मों को ईश्वरार्पण करने का उपदेश, उसी के द्वारा कर्म बन्ध से छुटकारा और मोक्ष	२७-२८ ,,
परमेश्वर सब को एकसा है, दुराचारी हो या पापयोनि, स्त्री हो या वैश्य या शूद्र निःसीम भक्त होने पर सब को एक ही गति मिलती है	२९-३३ ,,
यही मार्ग स्वीकार करने के लिए अर्जुन को उपदेश	३४ ,,
दसवाँ अध्याय (विभूति योग)—	**(१७८-१८९)**
भगवान की विभूति और योग शक्ति का कथन और उनके जानने का फल	१-७ पद्य
फल और प्रभाव सहित भक्ति योग का कथन	८-११ ,,
अर्जुन द्वारा भगवान की स्तुति एवम् विभूति और योग शक्ति को बतलाने के लिए प्रार्थना	१२-१८ ,,
भगवान की अनन्त विभूतियों में से मुख्य मुख्य विभूतियों का वर्णन	१९-४० ,,
विभूतियां परमेश्वर ही का तेज हैं	४१-४२ ,,

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

विषय	पृष्टाङ्क
ग्यारहवाँ अध्याय (विश्व-रूप-दर्शन योग)—	(१६०–२०८)
विश्व रूप का दर्शन देने के लिए भगवान से अर्जुन की प्रार्थना	१–४ पद्य
विश्व रूप का वर्णन और अर्जुन को दिव्य-दृष्टि दान	५–८ ,,
धृतराष्ट्र से संजय का विश्व रूप के वर्णन को कहना	६–१४ ,,
अर्जुन द्वारा भगवान के विश्वरूप को देखा जाना और स्तुति करना	१५–३१ ,,
भगवान् द्वारा अपने प्रभाव का वर्णन करना करना और युद्ध के लिए अर्जुन को प्रोत्साहन देना	३२–३४ ,,
अर्जुन द्वारा भगवान की स्तुति और चतुर्भुज रूप पुनः दिखलाने के लिए प्रार्थना करना	३५–४६ ,,
विना अनन्य भक्ति के विश्व रूप का दर्शन मिलना दुलभ है। फिर पूर्व स्वरूप धारण करना	४७–५१ ,,
भक्तिसे निस्सङ्ग और निर्वैर होकर परमेश्वरा-र्पण बुद्धि के द्वारा कर्म करने के विषय में सर्वार्थ साररूप अर्जुन को उपदेश	५२–५५ ,,
बारहवाँ अध्याय (भक्ति योग)—	(२०६–२१४) ,,
साकार और निराकार के उपासकों की उत्त-मता का निर्णय और भगवत् प्राप्ति के उपाय का विषय	१–१२ पद्य

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

विषय	पृष्टाङ्क
भक्तिमान् पुरुष की स्थिति का वर्णन और भगवत् प्रियता	१३-१६ पद्य
इस धर्म का आचरण करने वाले श्रद्धालु भक्त भगवान् को अत्यंत प्रिय हैं	२० ,,
तेरहवाँ अध्याय (क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग योग)—	(२१५-२२४)
क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ की व्याख्या, इन का ज्ञान ही परमेश्वर का ज्ञान है	१-२ ,,
क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ विचार उपनिषदों और ब्रह्म सूत्रों का ही है	३-४ ,,
क्षेत्र स्वरूप लक्षण, ज्ञान स्वरूप लक्षण	५-११ ,,
ज्ञेय के स्वरूप का लक्षण, इन सब को जान लेने का फल	१२-१८ ,,
प्रकृति-पुरुष विवेक, करने धरनेवाली प्रकृति है, पुरुष अकर्त्ता किन्तु भोक्ता द्रष्टा इत्यादि है	१९-२१ ,,
पुरुष ही देह में परमात्मा है, इस ज्ञान से पुनर्जन्म नष्ट होता है	२२-२३ ,,
आत्मज्ञान के मार्ग	२४-२५ ,,
क्षेत्र क्षेत्रज्ञ के संयोग से स्थावर जङ्गम सृष्टि, इस में जो अविनाशी है वही परमेश्वर है	२६-२८ ,,
करने धरनेवाली प्रकृति है और आत्मा अकर्त्ता है, सब प्राणिमात्र एक में हैं और एक से सब प्राणिमात्र होते हैं यह जान लेने से ब्रह्म प्राप्ति	२९-३० ,,

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

विषय पृष्टाङ्क

आत्मा अनादि और निर्गुण है अतएव यद्यपि वह क्षेत्र का प्रकाशक है तथापि निर्दोष है, क्षेत्र क्षेत्रज्ञ के भेद को जान लेनेसे परम सिद्धि ३१-३३ पद्य

चौदहवाँ अध्याय (गुण त्रय विभाग योग)— (२२५-२३२)

ज्ञान की महिमा और प्रकृति पुरुष से जगत की उत्पत्ति। पुरुष परमेश्वर पिता है और प्रकृति माता हैं १-४ पद्य

सत्त्व, रज, तम तीनों गुणों का वर्णन, उन के होने वाले परिणाम। एक एक गुण अलग नहीं रह सकता, कोई दो को दबा कर तीसरे की वृद्धि। प्रत्येक की वृद्धि के लक्षण ५-१३ ,,

गुण-प्रवृद्धि के अनुसार कर्म के फल और मरने पर प्राप्त होने वाली गति १४-१८ ,,

त्रिगुणातीत हो जाने से मोक्ष-प्राप्ति १९-२० ,,

अर्जुन के प्रश्न करने पर त्रिगुणातीत के लक्षण का और आचार का वर्णन २१-२५ ,,

एकान्त भक्ति से त्रिगुणातीत अवस्था की सिद्धि और फिर सब मोक्ष के, धर्म के, एवं सुख के अंतिम स्थान परमेश्वर की प्राप्ति २६-२७ ,,

पन्द्रहवाँ अध्याय (पुरुषोत्तम योग)— (२३३-२३८)

संसार वृक्ष का कथन और भगवद् प्राप्ति के उपाय १-६ पद्य

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

विषय	पृष्ठाङ्क
जीव एवम् लिङ्ग शरीर का स्वरूप एवम् सम्बन्ध, ज्ञानी के लिए गोचर है	७–११ पद्य
परमेश्वर की सर्व व्यापकता	१२–१५ ,,
त्तराक्षर-लक्षण, इस से परे पुरुषोत्तम	१६–१८ ,,
इस गुह्य पुरुषोत्तम-ज्ञान से सर्वज्ञता और कृतकृत्यता	१९–२० ,,

सोलहवाँ अध्याय (दैवासुर संपद्विभाग योग)— (२३९–२४६)

दैवी-सम्पत्ति के छब्बीस गुण, आसुरी सम्पत्ति के लक्षण, दैवी मोक्ष प्रद और आसुरी बन्धन कारक है	१–५ पद्य
आसुरी लोगों का विस्तृत वर्णन । उन को जन्म जन्म में अधोगति मिलती है	६ २० ,,
नरक के त्रिविध द्वार, काम, क्रोध और लोभ इन से बचने में कल्याण है	२१–२२ ,,
शास्त्रानुसार कार्य्याकार्य्य का निर्णय और आचरण करने के विषय में उपदेश	२३–२४ ,,

सत्रहवाँ अध्याय (श्रद्धात्रय विभाग योग)— (२४७–२५४)

सात्विक आदि त्रिविध श्रद्धा का वर्णन जैसी श्रद्धा वैसा पुरुष	१–४ पद्य
इन से भिन्न आसुर, सात्विक, राजस और तामस आहार	५–१० ,,
त्रिविध यज्ञ- तप के तीन भेद, शारीर वाचिक और मानस	११–१६ ,,

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

विषय

पृष्टाङ्क

इनमें सात्विक आदि भेदों से प्रत्येक त्रिविध है — १७-१६ पद्य
सात्विक आदि त्रिविध दान — २०-२२ ,,
ॐ तत्सत् ब्रह्म-निर्देश — २३ ,,
इनमें ॐ से आरम्भ सूचक तत् से निष्काम और सत से प्रशस्त कर्म का समावेश होता है — २४-२७ ,,
शेष असत अर्थात इहलोक और परलोक में निष्फल हैं — २८ ,,

अठारहवाँ अध्याय (मोक्ष सन्यास योग)— (२५५-२७५)

सन्यास और त्याग की व्याख्यायें — १-२ पद्य
कर्म का त्याज्य और अत्याज्य विषयक निर्णय — ३-६ ,,
कर्मयोग के तीन भेद सात्विक, राजस और तामस, फलाशा छोड़ कर कर्म करना ही सात्विक त्याग है — ७-६ ,,
कर्मफल त्यागी ही सात्विक त्यागी है क्योंकि कर्म तो किसी से भी छूट ही नहीं सकता है — १०-१२ ,,
कर्मों के होने में सांख्य सिद्धांत का कथन — १३-१८ ,,
तीनों गुणों के अनुसार ज्ञान, कर्म, कर्ता, बुद्धि, धृति और सुख के प्रथक प्रथक भेद — १६-४० ,,
फल सहित वर्णधर्म का विषय — ४१-४८ ,,
ज्ञान निष्ठा का विषय — ४६-५५ ,,
भक्ति सहित निष्काम कर्मयोग का विषय — ५६-६६ ,,
श्री गीता जी का महात्म्य — ६७-७८ ,,

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

श्रीमान् राजाबहादुर

श्री० महाराजकुमार बलभद्रसिंह जू देव

दतिया राज्य

का

प्राक्-कथन

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

गीता-गौरव



श्रीमान् बलभद्रसिंह जूदेव
राजा बहादुर
दतिया राज्य (बुन्देलखण्ड)

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

प्राक्-कथन



रत वर्ष की सभ्यता प्राचीन तम होना निर्विवाद सिद्ध है। इस की यह सभ्यता अपने साहित्य की संस्कृति पर अवलंबित है इस का सम्पूर्ण मर्म हमें अपने प्राचीन साहित्यिक ग्रंथों से भली प्रकार मिलता है।

वेद, स्मृति, शास्त्र, उपनिषद्, पुराण और महाभारत आदि ग्रंथ-रत्न इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं।

हमारे इस विश्व वंदनीय साहित्य का निर्माण एक दिन ही में नहीं हो गया था, इस भारतीय वसुन्धरा की अनेकानेक पुण्यतम आत्माओं ने अपने प्रबल तप और संयत मस्तिष्क द्वारा सहस्रों वर्ष अनवरत कठिन परिश्रम के पश्चात् दैवी विशुद्ध ज्ञान से इसे निर्माण किया था उसी के फल स्वरूप समय समय के कितने ही संघर्षण सह कर आज भी हम अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं और अब भी अपने साहित्य तथा अपनी संस्कृतिपर गर्व रखते हैं। हमारा यह साहित्य मानव मात्र को विश्व-कल्याण का संदेश देता है और संसार के साहित्य में अपना सर्वोच्च * स्थान और विशेष महत्व रखता है।

---

*(अ) "यदि हम पक्षपात रहित होकर भली भाँति परीक्षा करें तो हम को स्वीकार करना पड़ेगा कि हिन्दू ही सारे संसार के साहित्य, धर्म और सभ्यता के जन्मदाता हैं"

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

हिन्दू–संसार की संस्कृति का आधार दर्शन है, दर्शन पर धर्म और धर्म पर विभिन्न साहित्य अवलंबित है। हिन्दू धर्म का अंतिम सिद्धांत है कि आधिभौतिक उपादानों से ब्रह्माण्ड की सृष्टि होती है। ब्रह्माण्ड की सृष्टि दिक् और काल के अंतर्गत हुआ करती है ये दिक् और काल माया की शक्ति से, जो कि ब्रह्म की वृत्ति ही से उत्पन्न होती है, संचालित होते हैं।

ब्रह्म की सृष्टि, स्थिति और संहार ये तीन मुख्य दशाएँ है इन दशाओं को दार्शनिकों ने सत, रज और तमो गुण के नामसे बतलाया है। इसी तत्व का उपदेश श्री कृष्ण परमात्माने महाभारतीय युद्ध के प्रारम्भ में कुरुक्षेत्र के रणाङ्गण में अर्जुन को बतलाया है जो श्री वेद व्यास जी द्वारा हम को गीता नाम से प्राप्त होकर हमको गौरवान्वित कर रहा है।

इस महान् ग्रंथ, गीता, पर, संसार के अधिकांश प्रमुख एवम् प्रकाण्ड विद्वान महानुभाव यथेष्ट लिख चुके हैं तथापि इस के गहन-तम-तत्व को पूर्ण रूपेण समझना कठिन ही सा प्रतीत होता है। इस महान ग्रंथ के एक एक श्लोक में मसुक्षुओं के निमित्त असाधारण सार घनीभूत होकर विद्यमान है।

D. O. Brown Esqr.

From "Daily Tribune". dated 20th Feby 1884

(ब) संस्कृत की समता कोई भाषा नहीं कर सकती। यूरोप की तमाम भाषाएँ जिन को हम Classical कहते हैं इसी से निकली हैं।

W. C. Toylor Esqr.

[भारत–भारती से]

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

गीता की विमल एवम् विचित्र विवेचनाओं पर विदेशी विद्वान भी विचार कर विमुग्ध हो जाते हैं; गीता को समस्त संसार सम्मान की दृष्टि से देखता है अतः यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि गीता सार्वभौम का उज्वल धर्म-ग्रंथ है।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है गीता में आधारभूत तत्व का निरूपण किया गया है। सर्व श्रेष्ठ ज्ञान का भण्डार उपनिषदों में है और उनका सर्वश्रेष्ठ निचोड़ गीता में भरा हुआ है यों तो गीता में ७०० श्लोक हैं उन में लगभग १२५ श्लोक धृतराष्ट्र संजय तथा अर्जुन की युक्तियों में निकल गए हैं शेष ५७५ श्लोक ऐसे हैं जिन में अगाध गम्भीर दार्शनिक तत्व के अतिरिक्त, सामाजिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक तत्वों का भी पूर्णतयाः समावेश है प्रत्येक श्लोक रूपी बिन्दु में ज्ञान का अपरिमित सिंधु समाया हुआ है।

गीता का प्रचार और आदर समस्त संसार में समान भाव से है; संसार की ऐसी कोई भाषा नहीं है जिस में इस का अनुवाद न हुआ हो इस की व्यापकता, सर्वमान्यता, तथा लोकप्रियता का पता तो इसी से चलता है कि लगभग एक सहस्र रूपान्तरों में यह अनूदित हो चुकी है और निरन्तर होती ही जा रही है।

हिन्दी के प्रसिद्ध सिद्ध हस्त लेखक तथा कवि बुन्देल-खण्डान्तर्गत तालबेहट निवासी श्री० पं० गौरीशङ्कर जी द्विवेदी 'शङ्कर' ने गीता का प्रस्तुत सरल एवम् सरस छंदोबद्ध रूपान्तर कर जो सराहनीय सफल प्रयास किया है इस के लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। प्रस्तुत अनुवाद में विशेषता

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

यह है कि एक श्लोक का भावार्थ एकही छंद में सरस और सरल भाषा में व्यक्त किया गया है तथा छन्दों में अनर्गल एवं अनुपयुक्त शब्दों का आडम्बर भी नहीं होने पाया है साधारण पढ़े लिखे व्यक्ति जिन की गति संस्कृत में नहीं है, इस पद्यानुवाद से गीता के आनन्ददायी तत्व को समझ कर इहलौकिक और पारलौकिक आनन्द की सिद्धि में समर्थ हो सकेंगे।

पद्यानुवाद के अतिरिक्त भूमिका में द्विवेदी जी ने कितने ही ज्ञातव्य विषयों पर समुचित प्रकाश डाला है जिस से पुस्तक और भी अधिक महत्व पूर्ण हो गई है हमें विश्वास है इस सफल अनुवाद का जिज्ञासु जगत में बहुत सम्मान होगा।

अन्त में हम प्रभुसे प्रार्थना करते हैं कि सांसारिक जीवन मनुष्य मात्र का गीता मय होकर सांसारिक यात्रा को सरलता पूर्वक सुखमय पूर्ण करने में समर्थ हो।

बलभद्र सिंह

राजा बहादुर, दतिया राज्य.

(मध्य भारत)

लखनऊ
३०-३-३५

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

भूमिका

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

प्रथम संस्करण की

भूमिका

——:*o*:——



हम को अपने पूर्वजों की आदर्शता, उनके विचार, और सिद्धान्तों का परिचय, केवल उनके ग्रन्थों ही से मिल सकता है; परन्तु हमारे वे अपूर्व ग्रन्थ जिन से कि हमें उन के मन की उच्चता की झलक, उदारता, नीति स्वावलम्बन, आदि का अपूर्व ज्ञान हो सकता है–सब संस्कृत भाषा में सम्पादित किये गये हैं यद्यपि उन सब ग्रन्थ रत्नों का अनुवाद हिन्दी में हो चुका है पर उसी पुराने ढङ्ग पर, यद्यपि उस अनुवाद में यथार्थ में कोई त्रुटियाँ दोष नहीं है परन्तु कुछ विचारशील सज्जनों को छोड़ हमारी आधुनिक प्रारम्भिक शिक्षा प्रणाली के कारण कुछ ऐसी प्रकृति सी हो गई है कि पुराने ढंग की लिखी हुई पुस्तकों का मनन करने में पूर्णतया दत्त चित्त नहीं होते–और यही उन अपूर्व ग्रन्थों के सिद्धान्तों और पूर्वजों के विचारों से अनभिज्ञ रहने का मूल कारण है। उपरोक्त पूर्ति ही के कारण यह इस प्रकार के प्रचलित सरल छन्दों में अनुवाद किया गया है। अनुवाद कैसा है यह कहना बड़ाही कठिन प्रतीत होता है, क्योंकि

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

प्रथम तो विषय ही वड़ा गूढ़ और कठिन है और द्वितीय अनुवादक भी कोई कविता का मर्मज्ञ नहीं तीसरे यह अनुवाद आज से ३ वर्ष पहले का किया हुआ है। तब ही से यह पुस्तक प्रेस, के ऐसे मैनेजर के पास पड़ी रही जो कि अब तक यही आश्वासन देते रहे कि शीघ्र प्रकाशित हो जायगी अब ज्यों त्यों कर के यह मिल सकी है और प्रकाशित हो रही है। इसीकारण से इसे मैं भली प्रकार, जैसा कि मैं देखना चाहता था, नहीं देख सका हूँ। यदि द्वितीय संस्करण का सौभाग्य प्राप्त हुआ तो अवश्य इसकी त्रुटियाँ दूर करने का उद्योग करूँगा।

अन्त में मैं अपने प्रिय मित्र श्री "रसिकेन्द्र" "फणीन्द्र" और "विप्रजी" को, शुभ सम्मति देने पर और श्रीयुत मिश्र परमानन्द जी को इसके इस संस्करण के प्रकाशन का भार लेने पर अति धन्यवाद देता हूं आशा है पाठक इसे अपनाकर मेरे उत्साह को बढ़ावेंगे।

"शङ्कर-भवन"
तालबेहट—झाँसी
२०-१-२२

गौरीशङ्कर द्विवेदी

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri



द्वितीय-संस्करण की

भूमिका

विषय-- प्रवेश

श्रीमद् भगवद्गीता के छन्दोबद्ध अनुवाद को 'गीता गौरव' के रूप में प्रस्तुत करते हुए मुझे हर्ष है। इस के द्वितीय संस्करण का भी अवसर प्राप्त हो सकेगा ऐसी अधिक आशा नहीं थी, कितनी ही बार इच्छा हुई कितने ही मित्रों ने अनुरोध किया किन्तु सांसारिक जीवन की उलझनों में जकड़े रहने के कारण इस गुरुतर कार्य्य को हाथ में लेने का साहस ही नहीं होता था, किन्तु प्रभु की लीला अपार है उस एक जगदाधार ही के संकेतमात्र पर अखिल विश्व के सब कार्य्य हुआ करते हैं मनुष्य तो केवल निमत्त मात्र ही बन जाया करता है। प्रस्तुत प्रयास भी श्री कृष्णभगवान की असीम अनुकम्पा और सद् प्रेरणा ही का परिणाम है, ऐसी मेरी दृढ़ धारणा है अतएव सर्वप्रथम अत्यन्त ही श्रद्धाभाव से मङ्गलमय भगवान श्री कृष्ण के चरणों में अनेकानेक नमस्कार करते हुए पाठकों से अनुरोध करता

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

हूँ कि वे श्री वेदव्यास के निम्नलिखित शब्दों में गीताशास्त्र को स्मरण करने की कृपा करें :—

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः
या स्वयं पद्मनाभस्य मुख पद्माद्विनिः सृता।
(महाभारत)

अर्थात् श्रीगीता जी को पढ़कर भली प्रकार अर्थ और भाव सहित अंतःकरण में धारण कर लेना मुख्य कर्तव्य है। गीता स्वयम् श्रीपद्मनाभ भगवान विष्णु के मुखारविन्द से कही गई है अतएव अन्य शास्त्रों के विस्तार से क्या प्रयोजन है?

अपनी बात

श्रीमद्भगवद्गीता का संसार में कितना सम्मान है इस का मर्म, जब हम यह विचार करते हैं कि गीता को अनेकानेक लेखकों ने संसार की भिन्न भिन्न भाषाओं में लिखा है और अबभी लिखते जारहे हैं, भली प्रकार मिल जाता है। हिन्दी, उर्दू, फारसी, संस्कृत आदि भाषाओं के अतिरिक्त भारतवर्ष की अन्य भाषाओं में जैसे गुरुमुखी, सिंधी, मेवाड़ी, गुजराती, मराठी, कनाड़ी, उड़िया, तामिल, तेलगु, मलायालम्, आदि में भी गीता के कितने ही संस्करण निकलचुके हैं इस प्रकार भिन्न भिन्न भाषाओं में प्रकाशित हुई टीकाओं और अनुवादों की संख्या एक सहस्र से भी अधिक है। विदेशों में भी गीता का भरपूर प्रचार है अंग्रेजी भाषा में भी प्राय: १५० प्रकार के भिन्न भिन्न संस्करण लाखों की संख्या में छपचुके हैं, जर्मन और फ्रेंच आदि भाषाओं

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

में भी इसी प्रकार ही इसका प्रचार है।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि गीता के इतने अनुवाद होते हुए भी मैं ने यह दुस्साहस क्यों किया इस के लिए मेरा भी एक मात्र वही सविनय निवेदन है जो भक्त प्रवर गोस्वामी तुलसीदास जी अपने लोकप्रिय ग्रंथ-रत्न रामचरितमानस को लिखते समय कह गए हैं कि :—

कवि न होउँ नहिं चतुर कहाऊँ,
मति अनुरूप राम गुण गाऊँ।
कहँ रघुपति के चरित अपारा,
कहँ मति मोर निरत संसारा।
जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं,
कहहु तूल केहि लेखे माँही।
समुझत अमित राम प्रभुताई,
करत कथा मन अति कदराई।

शारद शेष महेश विधि, आगम निगम पुराण
नेति नेति कहि जासु गुण, करहिं निरन्तर गान।

सब जानत प्रभु प्रभुता सोई,
तदपि कहे बिनु रहा न कोई।

(बाल काण्ड)

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

प्रभु की असीम प्रभुता कौन नहीं जानता ? प्रभु की अपार लीलाओं से कौन अनभिज्ञ है ? प्रभु की गुण गाथाएँ कौन नहीं गाता ? फिर भी किसी ने उसका अब तक पार पाया है ? किसी को भी उस से तृप्ति हुई है ? यही बात मेरे भी लिए है ! मैं यह मानता हूँ कि गीता के सुन्दर, भावपूर्ण और सरस अनेकानेक गद्य पद्य मय टीका टिप्पणियों सहित अनुवादों के समक्ष यह तुच्छ कृति उपहासास्पद ही होगी किन्तु इसका मुझे कोई हर्ष विषाद नहीं। मुझे तो इस ही में संतोष है कि श्री कृष्णभगवान् की पवित्र गुण गाथाओं की चर्चा में मेरे जीवन के कुछ समय का सदुपयोग तो हो गया, प्रभु की प्रेरणा के अनुसार मैं इसे पाठकों की सेवा में भेंट कर सकने में समर्थ तो हो सका। इस को लिखने में मुझे तो सचमुच ही अनर्वचनीय आनन्द प्राप्त होता रहा है अब यदि जन साधारण का भी इस से-कुछ हित हो सका तो उसे मैं अपना परम सौभाग्य समझूँगा अन्यथा "स्वान्तः-सुखाय" तो मेरा यह प्रयास है ही।

भूमिका द्वारा गीता का परिचय देना ऐसे है जैसे सूर्य को दीपक दिखलाना किन्तु वर्तमान शैली ही ऐसी है जिस से भूमिका लिखने के लिए बाध्य हो जाना पड़ता है अतएव संक्षेप में यहां उस रूढ़ि का निर्वाह कर देना भी आवश्यक जान पड़ता है।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

पाठक देखेंगे कि इस संस्करण में अनेकानेक परिवर्तन और परिवर्द्धन कर दिए गए हैं। प्रथम संस्करण में इसका

ग्रंथका नाम गीता-गौरव

नाम "श्रीमद् भगवत् गीता का सरल हिन्दी के छंदों में भावानुवाद" रक्खा गया था जो आवश्यकता से कहीं बड़ा जान पड़ता है अतएव इस बार इस का नाम "गीता-गौरव" ही रख दिया गया है।

प्रथम-संस्करण में श्लोकों का केवल भावानुवाद ही दिया गया था किन्तु इस बार संस्करण के मूल श्लोक भी

अनुवाद

अनुवाद के साथ ही साथ दे दिए गए हैं एक श्लोक का एक ही पद्य में अनुवाद किया गया है। अनुवाद तो प्रातः सब ही बदलना पड़ा है कारण यह है कि साहित्यिक-जीवन के प्रारम्भिक प्रयास का श्रीगणेश उस ही अनुवाद से हुआ था अब बीस वर्ष पश्चात् वह रुचिकर प्रतीत न होना स्वाभाविक ही है यद्यपि समयाभाव के कारण अब भी वह पूर्ण संतोष प्रद नहीं हो सका है फिर भी पाठक देखेंगे कि भावों की रक्षा का भरपूर ध्यान रक्खा गया है।

जहाँ तक हो सका है अनुवाद में सरल शब्द ही व्यवहृत किए गए हैं फिर भी जो कठिन शब्द आ गए हैं

कठिन शब्द का अर्थ

उन का अर्थ दे दिया गया है जिस से पाठकों को इस के मनन करने में कठिनाई न पड़े। जानने योग्य अन्य विशेष बातों का भी उल्लेख कर दिया गया है।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

भूमिका में और भी कितने ही आवश्यक विषयों का

गीता के जानने योग्य आवश्यक विषय

समावेश कर दिया गया है जिस से गीता का स्वाध्याय करने के पूर्व पाठक यह भली प्रकार जान लें कि गीत-ज्ञान वास्तव में क्या है ? किन परिस्थितियों में उस का प्रदुर्भाव हुवा था ? गीता को सार्वभौम धर्म ग्रंथ क्यों कहा गया है ? उसके सार्वभौम सिद्धांत कौन है ? सांख्य और योग क्या है ? भक्तियोग, कर्म-योग और ज्ञान-योग का तात्पर्य्य क्या है ? धर्म और अधर्म का विवेचन कैसे करना चाहिये ? त्याग से परमात्मा की प्राप्ति कैसे हुआ करती है ? गीताकार कृष्ण द्वैपायन भगवान् वेदव्यास कौन थे ? गीता का माहात्म्य क्या है ? उसके उपदेशों का सार क्या हैं ? और विश्व को उसका क्या संदेश मिलता है ? इत्यादि; महाभारत का भी संक्षेप में उल्लेख कर दिया गया है जिससे पाठकों को पूर्व वृत्तांत विदित हो जाय और गीता-ज्ञान को मनन करने में सुविधा हो।

गीता-विषयक जितने भी चित्र प्राप्त हो सके हैं इस

गीता-विषयक चित्र

में दे दिये गए हैं कुछ और अधिक चित्रों को देने की मेरी इच्छा थी किन्तु अनेक कारणों से ऐसा मैं नहीं कर सका हूँ आशा है पाठक अभी इतने ही पर संतोष करेंगे यदि कभी फिर इस के छपने का अवसर प्राप्त हुआ तो इसे

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

और भी अधिक अच्छे रूप में पाठकों की सेवा में उपस्थित करने का प्रयत्न करूँगा।

अब अपनी इन बातों में पाठकों का और अधिक समय न लेकर मैं गीता के मुख्य विषय की ओर अग्रसर होता हूँ।

संसार में समस्त मानव-जाति पर श्रीमद् भगवतगीता का

गीता सार्वभौम धर्म-ग्रंथ है

अपूर्व प्रभाव है एक समय था जब अन्य देशों के विद्वान् गीता-ज्ञान से अनभिज्ञ थे और इसे वे केवल इसकारण से, कि श्री कृष्ण भगवान् हिन्दू थे और वेद व्यास भी हिंदू धर्म के अनुयायी थे, गीता को केवल हिन्दुओं ही का धर्म ग्रंथ मानते थे किन्तु अब उसके उपदेशों की गुरुता ने, विषय प्रतिपादन की महत्ता ने समस्त जगत् के विद्वानों पर अपनी छाप जमा दी है। उसने सिद्ध कर दिया है कि गीता केवल हिन्दुओं ही के लिए नहीं, भारतवर्ष ही के लिए नहीं, वरन् समस्त जगत् के कल्याण के लिए है। गीता में ऐसा आध्यात्मिक ज्ञान है जिस के मनन करने से जिसके अनुसार आचरण करने से अपने आप मनुष्य मात्र से प्रेम उत्पन्न हो जाता है परस्पर बंधुत्व के भावों का प्रादुर्भाव हो जाता है।

मानव-हृदय न तो भारतीय ही है और न यूरोपीय या अन्य देशीय वह तो मानव मात्र में थोड़े बहुत हेर फेर से सबही में विद्यमान है, उन सब ही में काम, क्रोध, मद, मत्सरता, हिंसा, भय, हर्ष, विषाद आदि उपस्थित रहते हैं

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

इन वेगों पर जय पाने के लिए मानव-हृदय स्वभाव ही से लालायित रहता है और किसी एक ऐसी वस्तु की खोज में रहता है जिससे प्रकृति के प्रपंचों से छुटकारा मिले उसे ही शाश्वत शांति कहा करते हैं। भव-सागर से पार होने ही के लिए विविध धर्मों की सृष्टि करके धर्मग्रंथों में अनेक प्रकार से अनेक मतमतावलम्बियों ने भिन्न भिन्न प्रकार से इस ही के भिन्न भिन्न नाम और रूप बतलाए हैं। इसी को ईसाइयों ने सातवाँ स्वर्ग, मुसलमानों ने बहिश्त, बौद्धों ने निर्वाण, जैनियों ने कैवल्य ज्ञान, सगुण उपासकों ने गोलोक, शिवलोक आदि, दार्शनिकों ने मुक्ति और गीता कारों ने ब्रह्म निर्वाण माना है।-

इस से यह निष्कर्ष निकलता है कि अनेकानेक धर्माव लम्बियों का अंतिम ध्येय एक ही है।

बाह्य दृष्टि से सुखी प्रतीत होते हुए भी हम में से अनेकों के हृदयों में जिन दुःखों और संतापों का अन्तःप्रवाह निरन्तर हुआ करता है, शरीर मात्र के साथ जो घटनाएँ अनिवार्य्य रूप में अवश्यंभाविनी हैं, जिन कारणों से हमारे हृदयों में व्यथाएँ उत्पन्न होतीं हैं उन वास्तविक या अवास्तविक दुखों, शोकों और संतापों से निवृत होने की समस्याओं पर तथा उनके समाधान के लिए भिन्न भिन्न देशों और कालों में अनेकानेक दार्शिनिकों ने प्रयत्न किए हैं ग्रंथ लिखे हैं। श्रीमद् भगवद्गीता भी उसी प्रकार के प्रयत्न का एक फल है युक्तियों का प्रतिपादन इस ग्रंथरत्न में इस सुन्दरता से किया गया है कि जिससे समस्त संसार में

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

सब ही धर्मों के अनुयायियों द्वारा इसको एक समान ही सम्मान प्राप्त है।

श्रीमद्भगवद्गीता के उन कुछ सर्व मान्य सिद्धान्तों का वर्णन कर देना यहाँ उचित जान पड़ता है वे इस प्रकार हैं:-

जन्म-मृत्यु और आत्मा का विवेक

जिसका जन्म हुआ है उस की मृत्यु अनिवार्य्य है, जो इस वास्तविक महत्व को नहीं जानते उन अज्ञानियों ही को उनके इष्ट सम्बन्धियों की मृत्यु अधिक शोक और दुःख देती है, यदि ऐसे अवसरों पर हमारे हृदयों में यह तत्व-ज्ञान जागृत रहे कि असत् का सद्भाव और सत् का अभाव नहीं हो सकता, आत्मा भी सत् है अतः आत्मा ऐसी नहीं है जिस का इस जन्म के पूर्व सद्भाव न रहा हो अथवा जिसका इस जन्म के अनन्तर अभाव हो जाता हो।

जिस प्रकार एक शरीर की कौमार, यौवन और वृद्ध ये तीन अवस्थाएँ होती हैं उसी प्रकार देहान्तर की प्राप्ति भी एक अवस्था मानना चाहिए। इस आत्मा का न तो जन्म ही होता है और न मृत्यु ही - अतः यह बात नहीं है कि वर्त्तमान पर्य्याय के अनन्तर इस की कोई और पर्य्याय न होती हो। अतएव यह विचार करना कि यह मर जाता है, उचित नहीं है।

आत्मा को न तो शास्त्र छेद सकते हैं और न वह अग्नि से जल सकती है, जल उसे आर्द्र नहीं कर सकता और पवन उसे सुखा नहीं सकती है। आत्मा इन्द्रियों के अगोचर है।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

इन्द्रियों के विषयों की जो आसक्ति है वही पद पद पर

इन्द्रियों की विषयों में आसक्ति

दुःख उत्पन्न कर के हमको क्लेश पहुँचाया करती है, श्रीमद्भगवद्गीता में उनका जैसा युक्ति पूर्वक वर्णन किया गया है वैसा अन्यत्र कदाचित् ही मिलता हो। इन्द्रियों के द्वारा विषयों के आसक्ति रहित सेवन से-राग-द्वेष रहित सेवन से आत्मा में एक प्रकार की निर्मलता आती है और उसके द्वारा एक अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति होती है और फलतः उसकी विवेक शक्ति लुप्त नहीं होने पाती। इस के विपरीत, इन्द्रियों के विषयों का निरन्तर चिन्तन करते रहने से उन में आसक्ति बढ़ती है। जिसके कारण इच्छाएँ बढ़ती हैं उन समस्त इच्छाओं की पूर्ति कठिन होने के कारण बाधक सामग्रियों के प्रति क्रोध उत्पन्न होता है क्रोध के वेग में हिताहित का विवेक नहीं रहता फिर धारणाशक्ति में भ्रम उत्पन्न हो जाता है फल यह होता है कि बुद्धि का लोप होने लगता है जिससे कि मनुष्य कल्याण मार्ग से ही च्युत हो जाता है।

सुख दुख का विवेचन जिस सुन्दरता से गीता में

सुख और दुःख का विवेचन

किया गया है वह वर्णना तीत है, प्रायः देखा गया है कि मनुष्य सुख में तो सुखी प्रतीत होता है किन्तु दुख में दुखित हो कर अपने भाग्य को कोसने लगता है और उसे अपना दुर्भाग्य मानने लगता है किन्तु यदि गीता-ज्ञान से हम विचार करें तो दुख को

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

निकृष्ट मानना अज्ञानता का कारण है। दुःख ही से मनुष्य ईश्वर-प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है। सुख और शाश्वत शांति प्राप्त करने के पूर्व भगवान् रामचन्द्र, श्रीकृष्ण, महात्मा बुद्ध, ईसा मसीह आदि को भी दुःखों को पार करना पड़ा था वेदव्यास ने चातुर्य पूर्वक इसी लिए गीता का प्रथम अध्याय 'अर्जुन-विषाद-योग' के नाम से रक्खा है।

जो तत्व ज्ञानी हैं, जिनकी प्रज्ञा स्थिर है वे सांसारिक द्वन्द्वों का भी अतिक्रमण कर जाते हैं संसार के स्वभाव के अनुसार अनिवार्य्य अतः अवश्यंभाविनी घटनाएँ उनके गंभीर अंतस्तल को क्षुब्ध नहीं कर सकतीं हैं। वे कर्त्तव्य करते हैं किन्तु कर्त्तव्य निष्ठता के उच्च भावों से प्रेरित हो कर ही। प्रारम्भ से सिद्धिकाल पर्य्यन्त उन के हृदयों में फल-प्राप्ति की उत्सुकता अशान्ति नहीं उत्पन्न कर सकती और असिद्धि भी उनके हृदय को म्लान और दुःखित या शोकयुक्त नहीं बना सकती उनकी इन्द्रियाँ और मन स्वेच्छाचारी नहीं होते, उनके व्यापार उनके अभिलषित मार्ग ही में प्रवृत्त होते हैं इन्द्रिय और शरीराश्रित क्रियाओं में उनका अहङ्कार नहीं होता। उनके हृदयों में अनिर्वचनीय आनन्द का एक ऐसा प्रवाह निरन्तर बहता रहाता है जो इन्द्रियों के विषयों एवम् बाह्य पदार्थों से उत्पन्न हुए सुख से सर्वथा परे है। वे काम और क्रोधादिक वेगों के वशीभूत नहीं हो सकते, जय, पराजय, सुख दुःख, मान-अपमान, मित्र-शत्रु, योग-वियोग भवन-वन आदि में वे समदर्शी ही रहते हैं।

जिन को यह तत्वज्ञान नही वे ही अपनों को दूसरों के

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

एवम् दूसरों को अपने सुख दुःख का कर्त्ता मानते हैं, यह भी राग द्वेष की वृद्धि का एक मूल कारण है, वे यह नहीं जानते या जान कर भी भूल जाते हैं कि जीव लोक कर्म के सूत्र से बँधा हुआ है। वे दूसरों को अथवा दूसरे उन्हें कदापि सुख दुख नहीं दे सकते। पूर्व कृत कर्म के अनुसार ही मनुष्य को सुख और दुख मिला करता है। सुख दुख देनेमें वे या अन्य तो केवल एक बाह्य निमित्त मात्र ही बन जाते हैं। यदि ऐसा तत्व-ज्ञान जागृत रहे तो अहङ्कार हो ही नहीं सकता और दूसरों के प्रति क्रोध आदि जिन के परिणाम प्रायः बड़े ही भयङ्कर होते हैं, उत्पन्न नहीं हो सकते।

अज्ञानियों के हृदयों में कार्य्य में लगे रहने पर सदैव ही फल की प्राप्ति की उत्सुकता अथवा उसकी असिद्धि अधिक मात्रा में अशांति उत्पन्न करती रहती है किन्तु युक्तियों से यह स्वयम् सिद्ध होता रहता है कि आत्म-अज्ञानता ही दुःख का मूल कारण है इस ही से फिर मोह, विषयासक्ति तृष्णा, निर्बलता आदि विकारों की सृष्टि होती है इन ही विकारों से विवश होकर हम सफलता में सुख और असफलता में दुख अनुभव करने लगते हैं। अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति को सुख और उस में असफल होने पर दुःख मानने लगते हैं, संक्षेप में यदि यह कहा जाय कि "तृष्णा आदि विकारों सहित अज्ञानता से चित्त अशान्त होने से दुःख और चित्त शांत और सम होने से सुख होता है"

इस से यह स्पष्ट हो जाता है कि दुःख का मूल कारण अज्ञान है और अज्ञान की निवृत्ति केवल नित्य ज्ञान ही से

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

हो सकती है ज्ञान के प्रत्यक्ष और परोक्ष ज्ञान इस प्रकार दो भेद माने गए हैं। भगवान् कृष्ण ने इसी लिए अर्जुन-विषाद-योग, के पश्चात् द्वितीय अध्याय में आत्मा के परोक्ष ज्ञान का उपदेश दिया है यथा :—

शोच अशोच्यों का करते हो, विज्ञों का सा करते वाद;
पण्डित, जीवित और मरों का, करें नहीं कुछ शोच विषाद ।

(११ वाँ पद्य २ अध्याय)

इस प्रकार द्वितीय अध्याय में देहस्थित आत्मा के वास्तविक रूप और सम्बन्ध को समझा कर भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को मोह और शोक की निवृत्ति के लिए आत्मा और शरीर का सम्बन्ध, क्षत्रियोचित धर्मों का ज्ञान करा देना उचित समझा क्यों कि गीता-ज्ञान के गूढ़ उपदेश को जो कि अगले अध्यायों में कहा गया है चित्त की शांति के बिना समझ सकना सम्भव नहीं था।

योग और सांख्य

योग का अर्थ युक्त से है अभीष्ट वस्तु अर्थात् ईश्वर-प्राप्ति के लिए जो अनेक साधन युक्ति या मार्ग हैं उन ही का नाम योग है और जानने योग्य विषयों का संख्या से वर्णन करने को सांख्य कहा जाता है।

ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म करने को योग अथवा कर्मयोग या कर्मनिष्ठा कहते हैं और ज्ञानोत्तर कर्मों का त्याग करने को सांख्य या ज्ञान निष्ठा कहा गया है तात्पर्य्य यह है कि गीता में ईश्वर प्राप्ति के साधनों को योग (कर्मों का कारण)

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

और सांख्य (कर्मों का न करना-कर्मों का त्याग) ही के अंतर्गत माना गया है।

कितने ही टीकाकारों ने गीता में सांख्य (सन्यास) को प्रधानता देने का प्रयत्न किया है किन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं हैं गीता में तो दोनों ही विषयों का चतुराई से प्रतिपादन किया गया है।

शास्त्रकारों ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस प्रकार मोक्ष को सर्वोच्च स्थान दिया है अबजब तक मनुष्य संसार में अपने धर्म द्वारा व्यावहारिक, सामाजिक और नैतिक कर्म करके अर्थ और काम को प्राप्त न कर लेगा तब तक उसे मोक्ष नहीं मिल सकती जिस ने कुछ उपार्जन नहीं किया वह त्याग ही क्या करेगा? जो सांसारिक कर्मों को ही सुचारुरूप में सम्पन्न नहीं कर सका वह सन्यास लेकर ही क्या कर सकेगा हाँ यह अवश्य है कि कर्मयोग में भली प्रकार स्थित हुआ व्यक्ति सांख्य भी प्राप्तकर लेता है सूक्ष्म दृष्टि से विचार कीजिए तो कर्मयोग और सांख्य दोनों ही ईश्वर-प्राप्ति के श्रेयस्कर मार्ग हैं।

गीता के पूर्व रचे गए ऐसे तो अनेक ग्रंथ मिलेंगे जिन में उनके रचयिताओंने एक एक विषय का प्रतिपादन

कर्म-योग

योग्यता पूर्वक किया होगा जैसे कर्मकाण्ड के लिए महर्षि जैमिनी के ग्रंथ, ज्ञान काण्ड के लिए महर्षि बादरायण के ग्रंथ और भक्ति भावना के लिए महर्षि शाण्डिल्य के ग्रंथ किन्तु उन सब का सम्मिश्रण करके मुक्ति का मार्ग बतलाने वाला कोई भी ग्रंथ नहीं था, श्रीमद् भगवद्-गीता से उस अभाव की पूर्ति हुई और

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

विषय प्रतिपादन की महत्ता यहाँ तक बढ़ गई कि इसे सर्वोच्च स्थान प्राप्त हो गया। जिस कर्मयोग को असंगत मान बैठे थे उस ही को भगवान वेद व्यास ने निष्काम बनाकर मोक्ष-प्राप्ति के लिए उपादेय सिद्ध कर दिया।

श्री कृष्णभगवान् ने स्वयम् अपने श्रीमुख से तीसरे अध्याय में अर्जुन से कहा कि "कर्मों के बिना किए मनुष्यों को ज्ञान नहीं हो सकता और केवल सन्यासी ही हो जाने से मोक्ष नहीं मिला करती है और बिना कर्मों को किए कोई रह भी नहीं सकता है, प्रकृति स्वयम् कर्म करने के लिए विवश करती है इस लिए तू अनासक्त होकर कर्म कर, निरन्तर कर्तव्य कर्म का आचरण कर, इस प्रकार अनासक्त पुरुष कर्म करता हुआ भी परमात्मा को प्राप्त कर लेता है मैं स्वयम् कर्म करता हूँ इत्यादि। निम्न लिखित पद्यों को देखिए:-

बिना किए कर्मों को अर्जुन, होता नहीं नरों को ज्ञान;
केवल सन्यासी होने से, मोक्ष नहीं मिलती मतिमान।
बिना किए कर्मों को कोई, कभी नहीं रह सकता पार्थ;
करते विवश कर्म करने को, सब को प्रकृति-जनित गुण सार्थ

तीसरा अध्याय ४, ५ वाँ पद्य।

फल की अभिलाषा को तजकर, अर्जुन करो निरन्तर कर्म:
इच्छा रहित कर्म करने से, होता प्राप्त मोक्ष का मर्म।
हम को कुछ कर्तव्य नहीं है, त्रिभुवन में, हे चिंतामग्न!
सभी वस्तुएँ प्राप्त मुझे हैं, तौ भी रहूँ कर्म में लग्न।

तीसरा अध्याय १६, २२ वाँ पद्य।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

फिर भगवान कहते हैं कि यदि मैं ही कर्म करना छोड़ दूँ तो संसार के मनुष्य मेरा अनुकरण कर "महाजनो येन गतः स पंथा": कह कर कर्म करना त्याग देंगे अतएव फल की आशा तज कर कर्म करो इससे निष्काम कर्म करने का आदेश मिलता है निष्काम कर्म करने से बन्धन नहीं पड़ता, और इसी बन्धन से छूटने के लिए जन्म जन्मान्तर तक मनुष्य प्रयत्न करते हैं किन्तु जो उसके तथ्य को नहीं समझते वे सफल प्रयत्न नहीं होते

संसार में मनुष्य मात्र संस्कारों के बन्धन से जकड़ा रहता है। ज्यों ही वह किसी उद्देश्य को ले कर या इच्छा पूर्वक कोई भी कर्म करने के लिए अग्रसर होता है और कर्म करता है त्यों हीं वह संस्कारों के बंधन में बँध जाता है। अब यदि उसके कर्म अच्छे हुए तो संस्कार अच्छे मिलते हैं और यदि कर्म बुरे हुए तो संस्कार बुरे मिलते हैं; किन्तु संस्कार दोनों ही अवस्थाओं में अवश्य मिलते हैं जो कि जीवात्माकी आध्यात्मिक उन्नति में बाधा उत्पन्न किया करते हैं। अच्छे और बुरे संस्कारों की उपमा यदि सोने और लोहे के पिंजड़े से दी जाय तो अनुपयुक्त न होगी सोने के भी पिंजड़े में बंद होने पर तोता (सुआ) उससे मुक्त होने के लिए उतना ही व्याकुल रहता है जितना लोहे के पिंजड़े में स, इससे संस्कारों के बंधन से मुक्त होने का उपाय खोजना आवश्यक है। उस ही को भगवान् श्रीकृष्ण ने तीसरे अध्याय में बतलाया है :—

अनासक्त हो करै कर्म में, कर्मेन्द्रियगण को अनुकृष्ट;
इन्द्रिय-दमन चित्त से कर दे, वह मानव है पार्थ! विशिष्ट।

३ अध्याय ७ वाँ पद्य।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

ईश निमित्तिक कर्म-गणों से, अन्य कर्म हैं बन्धन रूप,
इससे फल-इच्छा को तजकर, करो कर्म हे भारत-भूप।

३ अध्याय ६ वाँ पद्य।

तात्पर्य यह है कि कर्मयोग का भली प्रकार अभ्यास कर के हम सब को अपनी मनोवृत्ति ऐसी बना लेना चाहिए जिस से कर्म के फल की आसक्ति न उत्पन्न होने पावे। निः स्वार्थ भाव ही से कर्मों को करें जिससे संस्कारों का बन्धन न पड़ने पावे। इस प्रकार अभ्यास से हम में धीरे धीरे निष्काम कर्म के भाव जागृत हो जावेंगे—

निष्काम कर्म

गीता में निष्काम कर्म की बड़ी ही महत्ता गाई गई है और सचमुच है भी उस का ऐसा ही महत्व, किन्तु हम सब को यह भली भाँति मनन करना आवश्यक है कि निष्काम कर्मों की भावनाओं का उदय कब और कैसे हो सकता है, वह कौन सा मार्ग है जिस के अनुसरण करने से हम निष्काम कर्म करने के अभीष्ट स्थान पर पहुँच सकते हैं? इस प्रश्न का गीता ही में उत्तर मिल जाता है और वह है कि 'शास्त्र-विधि से कर्मयोगी बनो, कर्मों को करो, और शास्त्रानुकूल आचरण करो तब ही निरासक्त और निष्काम कर्म करने की भावनाएँ जागृत हो सकेंगीं। पहिले सकाम कर्म करना ही पड़ता है तीसरे अध्याय के पद्य ४, ५ में गीता में ऐसा कहाभी गया है कि:—

विना किये कर्मों को अर्जुन, होता नहीं नरों को ज्ञान;
केवल सन्यासी होने से, मोक्ष नहीं मिलती मतिमान?

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

विना किये कर्मों को कोई, कभी नहीं रह सकता पार्थ !
करते विवश कर्म करने को, सब को प्रकृति-जनित-गुण सार्थ

इसी अध्याय के १६ वें पद्य में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि ' फल की अभिलाषा को तजकर निरन्तर कर्म करते रहने ही से मोक्ष मिलती है"

सारांश यही है कि फल में आसक्ति न रखते हुए कर्म करना चाहिए ऐसा करने से उस की सफलता और असफलता में हर्ष विषाद नहीं होता यश–अपयश से सुख-दुख नहीं मिलता और उससे सब सेबड़ा लाभ यह होता है कि अपने कर्तव्य पालन का ध्यान करते हुए जब मनुष्य प्राणिमात्र की हित–कामना से और विनम्र सेवा-भाव से, निरपेक्ष हो कर कर्म करता है तो उससे अनेकों का उपकार हो जाता है और उसकी आध्यात्मिक उन्नति भी अपने आप होती जाती है इस प्रकार कर्मयोग से अध्यात्मिक उन्नति होते होते वह मोक्ष का अधिकारी हो जाता है ।

भक्ति–योग

गीता के मत से जीव, ब्रह्म और जगत् वास्तव में एक ही माने गए हैं और प्राणिमात्र से प्रेम करना परमात्मा से प्रेम करना माना गया है । गीता के भक्ति योग का सार यही है । 'आत्मबुद्धि' या सर्वात्मबुद्धि से प्रेम करने को 'पराभक्ति' और 'अनन्यभक्ति' के नाम से गीता में उल्लेख है । ग्यारहवें अध्याय में तो यहाँ तक कहा है कि जिस रूप को देखने

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

के लिए देवता इच्छा करते हैं, जो कि संसार में दुर्लभ माना गया है, जिसको वेदाध्ययन से, तप से, दान से और यज्ञ से भी दूसरे नहीं देख सकते वही तात्विक दृष्टि से अनन्यभक्ति से मेरे भक्त विशेष ही देख सकते हैं और अन्त में मुझ में प्रविष्ट होने में समर्थ हो सकते हैं। वे भक्त मेरे लिए ही कर्म करते हैं और मुझे ही सब से उच्च पदार्थ मानते हैं। प्राणिमात्र पर प्रेम और दया का भाव रखते हुए वे किसी से भी वैर या द्वेष नहीं करते ऐसे ही भक्त मुझ को प्राप्त कर सकते हैं। यथा :—

सुरगण आकांक्षा करते हैं, जिसे प्राप्त करने को नित्य;
दुर्लभ है जग में वह तुम ने, देखा मेरा रूप अनित्य।
जिस प्रकार तुम ने देखी है, रूप-राशि,पाण्डव-कुल-धन्य;
वेदाध्ययन, तप, दान,यज्ञ,से, देख नहीं सकते हैं अन्य।
किन्तु परंतप पा सकते हैं, मुझ को मेरे भक्त विशेष;
इसी प्रकार तत्व से मुझ को, जानें, देखें, करें प्रवेश।
मेरे लिए कर्म करते हैं, परम—भाव जिनमें है व्याप्त;
वैर, सङ्ग त्यागी वे मेरे, भक्त कर सकें मुझको प्राप्त।

११ वाँ अध्याय ५२, ५३, ५४ और ५५ वाँ पद्य।

गीता में देवोपासना, सगुण उपासना, सकाम कर्म, आदि सब ही की प्रशंसा की है किन्तु ईश्वर—प्रेम की चरम सीमा 'पराभक्ति' ही को माना है।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

गीता में भक्तों की चार श्रेणियाँ मानी गई हैं।

आर्त्त मुमुक्षु और अर्थार्थी, ज्ञानी ये चारों नर-रत्न,
अर्जुन! मुझे सदा भजते हैं, पुण्यवन्त कर के सद्यत्न।

७ वाँ अध्याय १६ वाँ पद्य।

ज्ञान-योग

अवतार और यज्ञों के उपदेश के अनन्तर गीता में द्रव्य-यज्ञ से ज्ञान-यज्ञ को विशेष महत्व दिया गया है। ज्ञान ही से मोह दूर होता है ज्ञान ही से मनुष्य सब में परमात्मा की अभिन्न आत्मा को देखता है; पाप के समुद्र कोभी घोर पातकी ज्ञान ही से पार कर के परम पद पा जाता है। पापों के समूह को ज्ञान-चिनगारी ही से भस्म कर सकता है। संसार में ज्ञान के समान कोई दूसरी पवित्र वस्तु नहीं है। इन्द्रियों के जीतनेवाले, श्रद्धावान नैष्ठिक व्यक्ति विशेष ही ज्ञान प्राप्त करके परम शांति पा सकते हैं।

श्रद्धाहीन और संदेह करने वाले व्यक्तियों के दोनों लोक नष्ट हो जाते हैं। ज्ञान से जिसका संशय नष्ट होगया हो और जो प्रभु को अर्पण करके कर्मों को करता हो ऐसा ही योगी कर्म-बंधों में नहीं फँसता है।

सातवें अध्याय के १७ वें १८ वें पद्य में तो ज्ञानी के लिए भगवान् ने यहाँ तक कहा कि :—

नित्य युक्ति भक्ति का ज्ञानी, इन सब से है बढ़ कर मित्र;
अतिशय प्रिय ज्ञानी को मैं हूँ, मुझ को प्रिय ज्ञानी सर्वत्र।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

मुझ को ये सब प्रिय हैं फिरभीज्ञानी प्रिय है मुझे विशेष;
मेरी गति ही का आश्रय ले, तजता युक्तात्मा निज वेष।

ध्यान–योग

कर्म के साथ ध्यान योग का सम्बन्ध, योगारूढ़ के लक्षण, ध्यानयोग के आवश्यक नियमों का वर्णन करने के पश्चात् गीता के ६ वें अध्याय में यह स्पष्ट उल्लेख है कि ध्यान योगी ही ब्रह्मभूत और अत्यंत सुखी होता है और जब मन संसार से विरक्त हो कर आत्मस्वरूप के दर्शनों के लिए प्रस्तुत होता है तब शुद्ध सूक्ष्म बुद्धि ही से वह प्रभु के दर्शन कर के संतुष्ट हो जाता है। यथाः—

योगाभ्यास किए जब होता, मन उपराम निरुद्ध विशिष्ट;
सूक्ष्मविशुद्ध बुद्धि से तब नर, प्रभु दर्शन कर हो संतुष्ट।

छठा अध्याय २० वाँ पद्य

जपता सदा अन्तरात्मा से, मुझ ही को जो श्रद्धावान;
उस योगी,को अधिक श्रेष्ठ मैं, सदा मानता हूँ, मतिमान।

छठा अध्याय ४७ वाँ पद्य

आशय यह है कि केवल बहिरङ्ग साधनों ही से मुक्ति नहीं मिला करती उसके लिए अंतरङ्ग साधन अत्यंत ही आवश्यक हैं जैसे संकल्प–जन्य सब बासनाओं का त्याग, इन्द्रियों पर अधिकार, चित्त की चंचलता का त्याग इस प्रकार के निरन्तर अभ्यास से जब योगी शांतचित्त हो जाता है तो उसे अवश्य परमानन्द प्राप्त होता है।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

धर्म और अधर्म का विवेचन और उसका प्रभाव भारतवासियों के नित्य प्रति के जीवन का एक विशेष अङ्ग है

धर्म और अधर्म का विवेचन

वैसे तो विश्व भर में, मानव-मात्र में, धर्म और अधर्म की भावनाएँ विद्यमान रहती हैं किन्तु धर्म-दृढ़ता, धर्म-भीरुता के जितने भाव भारतवर्ष में हैं उतने शायद ही और कहीं हों। धर्म शब्द के विद्वानों ने अनेक अर्थ किए हैं उन सब का सारांश यही है कि जिन कार्यों के करने से मानव-समाज की वास्तविक लौकिक और पर लौकिक उन्नति हो, आत्मस्वरूप का बोध हो, नीति और कर्तव्य का मर्म मिले उसे धर्म कहते हैं और उसके विपरीत आचरण वाले कार्यों को अधर्म कहते हैं।

देश के उत्थान और पतन में इन ही भावनाओं का बहुत कुछ हाथ रहता है। मोक्ष-प्राप्ति में भी धार्मिक-भावनाएँ सहायक हुआ करती हैं अनेक स्थलों पर गीता में इसका उल्लेख किया गया है। नवें अध्याय के २, ३ पद्य में स्पष्ट कहा गया है कि :—

विद्याओं, गुह्यों में उत्तम परम पवित्र और प्रत्यक्ष;
अनुष्ठान जो करें धर्मयुत, पाते हैं अविनाशी पक्ष।

× × × ×

धार्मिक श्रद्धा से विहीन नर, नहीं हो सकें मुझ में व्याप्त;
मृत्यु लोक संसार मार्ग में, करते पुनर्जन्म को प्राप्त।

धार्मिक विचारों को प्रगट करते हुए गीता में जिस दूरदर्शिता और विश्व-प्रेम-प्रियता से कार्य्य लिया गया है

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

वह श्लाघनीय है, उस के अनुशीलन से यह भली भाँति मर्म मिल जाता है कि संसार में अपने ही धर्म से मनुष्य को शाश्वत शाँति, परम पद या मुक्ति मिल सकती है। निम्न-लिखित दो पद्यों में उनका सार देखिए :—

अन्य धर्म समधिक हो तौ भी, श्रेयष्कर है अपना धर्म,
मरना भला स्वकीय धर्म में, अपर–धर्म करता भय कर्म।

३ अध्याय ३५ वाँ पद्य।

× × × ×

गुण संयुक्त अपर धर्मों से, विगुण–धर्म अपना ही श्रेष्ठ;
निज स्वभाव से करें कर्म जो, नहीं पाप पाते मति ज्येष्ठ।

१८ अध्याय ४७ वाँ पद्य।

× × × ×

अवतार

अवतार विषयक जिज्ञासा का भी संक्षेप में सुन्दरता पूर्वक समाधान भगवद्गीता में किया गया है। चौथे अध्याय में भगवान् श्री कृष्ण ने स्पष्ट कहा है कि यद्यपि मैं अजर और अमर हूँ किन्तु अपनी प्रकृति के अनुसार अपनी ही माया से मैं अवतार लिया करता हूँ; किस लिए वह भी सुनिए :—

यद्यपि मैं हूँ अज अविनाशी, और प्राणियों का आधार;
फिर भी स्व-प्रकृति का आश्रित हो, लूँ निज माया से अवतार।

जब जब ग्लानि धर्म की होती, और अधर्मों का उत्थान;
तब तब मैं अपनी आत्मा को, सृजता हूँ भारत–संतान!

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

साधु–वृंद–रक्षा करने को, कर अधर्मियों का संहार;
धर्मस्थापन के निमित्त मैं, लेता हूँ प्रतियुग अवतार।

चौथा अध्याय ६. ७ और ८ वाँ पद्य।

यज्ञ

यज्ञों की विशेषताओं पर भी गीता में लिखा गया है चौथे ही अध्याय में अनेक प्रकार के लाक्षणिक यज्ञों का वर्णन किया है यथा:—

अर्पण-हवि-पावक-आहुति इन, सब को जाने ब्रह्म-स्वरूप,
ब्रह्म-कर्म में रत हो कर के, उसे प्राप्य है ब्रह्म सुभूप!
कोई योगी मुख्य मान कर, विधिवत् पूजें देवस्तोम;
कोई ब्रह्मरूप पावक में, यज्ञ-ब्रह्म का करते होम।
कोई ज्ञानेन्द्रिय-वृंदों को, संयमाग्नि में करते लीन;
कोई विषयों का लय करते, इन्द्रिय पावक में मतिपीन।
आत्म दमन रूपी पावक को, दीप्त ज्ञान से करके आर्य्य;
इन्द्रिय प्राणों के कर्म्मों का, कोई करते आहुति-कार्य्य।
कोइ द्रव्य से कोई तप से, करैं योग से कोई यज्ञ;
वेद-पाठ ज्ञानों से कोई, यती साधते दृढ़-व्रत विज्ञ।
प्राण होमते हैं अपान में, कोइ प्राण के मध्य अपान;
प्राण अपान रोक के कोई, करते प्राणायाम महान।
कोई योगी थोड़ा खाकर, होमें प्राणों ही में प्राण;
यज्ञों के वेत्ता ये करते पाप-नाश, पाते कल्याण।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

यज्ञ-शेष के खाने वाले, ब्रह्म-सनातन करते प्राप्त;
है परलोक कहाँ अयज्ञ को, यह भी लोक न होता आप्त।
इस प्रकार के यज्ञ बहुत हैं, नानाविधि वेदों में उक्त;
वे हैं कर्मों से उत्पादित, उन्हें जान हो जाओ मुक्त।

चौथा अध्याय २४ वाँ से ३२ वाँ पद्य।

श्रीमद् भगवद्गीता में 'त्याग' की बड़ी ही महिमा गाई गई है और वास्तव में है भी उसकी ऐसी ही महिमा। यदि त्याग के सिद्धांतों का हम भली प्रकार मनन कर के उनके अनुसार आचरण करना प्रारम्भ कर दें तो हम सब ही का बड़ा ही हित हो, संसार के कितने ही झगड़े बखेड़ों का अंत हो जाय, ईर्षा, द्वेष, छल, कपट, झूँठ और हिंसा का अस्तित्व ही उठ जाय; मानव मात्र परस्पर भाई चारे में बँध जायँ और सदैव एक दूसरे की सहायता करते हुए अपना और विश्व का कल्याण करने में समर्थ हों। गीता का ज्ञान हम को सिखलाता है कि हम बाल्यकाल ही से 'त्याग' के मर्म को भली प्रकार समझ लें, गृहस्थाश्रम में उसी ज्ञान के अनुसार भली प्रकार 'त्याग' का आचरण करें ऐसा ही करने से हमको सच्चिदानन्द घन परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है विद्वानों ने त्याग को निम्न लिखित सात श्रेणियों में विभक्त किया है

त्याग से परमात्मा की प्राप्ति

मनुस्मृति में विष्णु की उपासना का एक अंश विशेष यज्ञों को माना गया है और उन के पाँच मुख्य विभाग कर किए गए हैं (१) ब्रह्म-यज्ञ (२) पितृ-यज्ञ (३) देव-यज्ञ (४) भूत-यज्ञ और (५) मनुष्य-यज्ञ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(१) निषिद्ध कर्मों का सर्वथा त्याग

चोरी, व्यभिचार, झूँठ, कपट, छल, हिंसा, अभक्ष्य भोजन और प्रमाद आदि शास्त्र विरुद्ध नीच कर्मों को मन, वाणी और शरीर से किसी प्रकार भी न करना। यह प्रथम श्रेणी का त्याग है

(२) काम्य कर्मों का त्याग

धन, पुत्र आदि प्रिय वस्तुओं को प्राप्त करने की इच्छा से एवम् संकट या रोग निवृत्ति के उद्देश्य से किये जानेवाले यज्ञ, दान, तप, और उपासनादि सकाम कर्मों को अपने स्वार्थ के लिए न करना। यह द्वितीय श्रेणी का त्याग है।

(३) तृष्णा का सर्वथा त्याग

स्त्री, पुत्र, धन, वैभव, लौकिक प्रतिष्ठा, पदवृद्धि आदि प्राप्त हुए अनित्य पदार्थों की वृद्धि को भगवत प्राप्ति में बाधक समझ कर उनका त्याग करना। यह तृतीय श्रेणी का त्याग है।

(४) स्वार्थ के लिए दूसरों से सेवा कराने का त्याग

अपने सुख के लिए किसी से भी धनादि पदार्थों की अथवा सेवा कराने की याचना करना एवम् बिना याचना के दिए हुए पदार्थों को या की हुई सेवा को स्वीकार करना तथा किसी भी प्रकार किसी से अपना स्वार्थ सिद्ध करने की मन में इच्छा रखना इत्यादि, जो स्वार्थ के लिए दूसरों से सेवा कराने के भाव हैं उन सब का त्याग करना। यह चतुर्थ श्रेणी का त्याग है।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(५) सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मों में आलस्य और फल की इच्छा का सर्वथा त्याग

ईश्वर की भक्ति, देवताओं का पूजन, माता पिता गुरु जनों की सेवा, यज्ञ, दान, तप तथा वर्णाश्रम के अनुसार आजीवका द्वारा गृहस्थ का निर्वाह एवं शरीर सम्बन्धी खानपान इत्यादि जितने कर्तव्य कर्म हैं उन सब में आलस्य का और सब प्रकार की कामना का त्याग करना। यह पंचम श्रेणी का त्याग है।

(६) संसार के सम्पूर्ण पदार्थों में और कर्मों में ममता और आसक्ति का सर्वथा त्याग

समस्त लौकिक और पारलौकिक विषय भोग रूप पदार्थों को क्षणभंगुर और नाशवान् होने के कारण अनित्य समझ कर उनमें ममता और आशक्ति न रखना एवम् अनन्यभक्ति से एक सच्चिदानन्द परमात्मा में मन, वाणी और शरीर द्वारा होने वाली सम्पूर्ण क्रियाओं में और शरीर में भी ममता और आसक्ति का सर्वथा अभाव हो जाना। यह षष्ठम श्रेणी का त्याग है।

(७) संसार, शरीर और सम्पूर्ण कर्मों में सूक्ष्म वासना और अहंभाव का सर्वथा त्याग

संसार के समस्त पदार्थों को अनित्य समझ कर सर्वत्र समभाव से परमात्मा ही को व्याप्त देखे और

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

संसारिक कर्मों में सूक्ष्म भावना का सर्वथा अभाव कर देने में समर्थ हो, कर्तापन का लेशमात्र भी अभिमान न रहे। यह सप्तम श्रेणी का त्याग है

गीता–ज्ञान का सार

श्रीमद् भगवद्गीता में दार्शनिक सिद्धांतों का जिस मौलिकता से वर्णन किया गया है यह सचमुच ही प्रशंसनीय है। उसको जितने ही ध्यान से मनन कीजिए, विचार कीजिए, उतना ही अधिक आनन्द मिलता है। यही एक ग्रंथ है जिससे कर्म, ज्ञान और भक्ति का वास्तविक मर्म मिल सकता है। इसी ग्रंथ-रत्न ही से हम में सदाचार, व्यक्ति गत स्वतंत्रता प्राणि-मात्र से प्रेम, आत्मश्रद्धा, और निष्काम कर्म करने के भाव जागृत होते हैं; इस ही को अध्ययन करने एवम् वास्तविक गीता-मय-जीवन बना लेने ही से ईश्वर-भक्ति, ज्ञान और ब्रह्म की प्राप्ति हुआ करती है।

गीता ज्ञान में पक्षपात, अंधश्रद्धा या सामाजिक विषमताएँ उत्पन्न करने के भाव नहीं हैं, निष्पक्ष भाव से सत्य की कसौटी पर कसे हुए मनुष्य मात्र को उस में एक समान ही व्यक्तिगत स्वतंत्रता के प्रेम प्रपूरित उपदेश मिलते हैं।

कोई भी हो, किसी भी धर्म का अनुयायी हो, किसी भी देश का निवासी हो, किसी भी अवस्था का हो कैसी ही अवस्था में हो इस एक ग्रंथ-रत्न को भली प्रकार

गीता के अध्याय १३ (पद्य ७ से ११), १६ (पद्य १ से ३) ,४ (पद्य २०) और १८ (पद्य ११) पर इस का स्पष्ट वर्णन मिलता है।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

अध्ययन करने और उसके ही अनुसार आचरण करने से मनुष्य सदैव ही समयानुकूल ज्ञान, शांति और सुख प्राप्त कर सकता है। अतएव यह आवश्यक है कि बाल्यकाल ही से गीता का अध्ययन किया जाय। बालकों का ध्यान सत्य, अहिंसा, क्षमा, दया, ज्ञान, पारस्परिक प्रेम और सद्भावनाओं की ओर आकर्षित किया जाय उन्हें अहङ्कार पूर्ण कर्म, शुष्क ज्ञान, अन्ध भक्ति और दुर्वासनाओं से, जिसके ही फल स्वरूप अनेकानेक उत्पात हुए और आए दिन हुआ करते हैं, बचाया जाय; इनको त्यागने की उन्हें बाल्यकाल ही से शिक्षा दी जाय, उनमें आत्मश्रद्धा, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और लगन से कार्य्य करने के भाव उत्पन्न किए जावें। इस धारणा का कि गीता गृहस्थाश्रम के पश्चात् वृद्धावस्था में पढ़ने की वस्तु है या गीता-पाठ से वैराग्य उत्पन्न हो जाता है, हमें बल पूर्वक निराकरण कर देना चाहिए और यह प्रयत्न करना चाहिए कि प्रत्येक नवयुवक गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट करने के पूर्व गीता-ज्ञान के तथ्य को भली प्रकार मनन कर ले कि किस प्रकार कर्म करने से उन का लोक और परलोक बन सकता है, उनका वास्तविक कर्तव्य क्या है और अंतमें वे किस प्रकार शाश्वत शांति, मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं।

मनुष्य योनि बड़ी ही कठिनता से ८४ लक्ष योनियाँ भोगने के पश्चात प्राप्त हुआ करती है इस से यह आवश्यक है कि मनुष्य योनि में हम सब सच्चिदानन्द परमात्मा को प्राप्त करने का उद्योग करें और ऐसा प्रयत्न करें जिससे नाशवान् क्षणभङ्गुर संसार के अनित्य भोगों से अरुचि और

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

सच्चिदानन्द परमात्मा की प्राप्ति में रुचि उत्पन्न हो, अज्ञानांधकार का अभाव और ज्ञान का उदय हो जिससे यह अमूल्य मनुष्य जीवन सार्थक बने।

गीता का विश्व को संदेश

मनुष्य जीवन सार्थक बनाने ही का उपदेश गीता में दिया गया है और वह भी इस सुन्दरता से कि मानव मात्र उस से भरपूर लाभ उठा सकता है। उपदेश करने में उपदेष्टा की प्रशंसा केवल इस में ही नहीं है कि वह उन की पात्रता और व्यवहार्य्यता पर विचार किए बिना ही उच्च से उच्च सिद्धांतों का प्रतिपादन करता चला जाय प्रत्युत उसकी प्रशंसा इस में है कि वह जिन्हें उपदेश दे रहा है उनकी तद्विषयक पात्रता और शक्यानुष्ठानता पर उसी गम्भीरता के साथ ध्यान दे जितना कि वह सिद्धांतों के चुनने में दिया करता है। मानव जीवन के किस वर्ण और किस आश्रम में कौन सा नैतिक या आध्यात्मिक सिद्धांत शक्य रूप से क्रिया में परिणत किया जा सकता है इस का विचार किए बिना ही जो उपदेश दिया जाता है वह एक प्रकार से निष्फल ही जाता है। इस उपदेश कोटि में भी यह और बड़ी विशेषता है कि जो उपदेश जितने ही अधिक संख्यक पात्रों के लिए व्यवहार्य्य होता हुआ सामान्य रूप से उन सब के लिए सुखावह होता है वह उपदेश उतनी ही उच्च श्रेणी के महत्व का होता है। उक्त प्रकार की पात्रता और व्यवहार्य्यता पर लक्ष्य रखते हुए भी श्रीमद् भगवद्गीता में उच्च से उच्च सिद्धांत सर्वाङ्ग रूप में ऐसे व्याप्त हो रहे हैं जैसे शरीर में आत्मा अथवा

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

तिलों में तैल । अभिप्राय यह है कि गीता में मानव मात्र के लिए ऐसा दिव्य वातावरण विद्यमान है जो उस के मनन करने वालों के ऊपर अमृतोपम प्रभाव डाले बिना नहीं रहता।

श्रीमद्भगवद्गीता के संदेश के अनुसार उच्चतम सिद्धांतों के अनुसरण के लिए यही आवश्यक नहीं है कि मनुष्य परिव्राट् होकर बन को चला जाय गीता का कदापि यह मन्तव्य नहीं है कि आजीविका के भिन्न भिन्न व्यवसाय एवम् पारिवारिक भरण पोषण की संलग्नताएँ भगवत् प्राप्ति के श्रेयष्कर मार्ग में बाधक बन कर आत्म-पात की ओर ले जाती हैं; प्रत्युत गीता की यह प्रेरणा है कि प्रत्येक व्यवसाय एवम् आश्रम में आत्मा की अमरता पर श्रद्धा रखकर निष्काम कर्म करने वाला, जितेन्द्रिय, एवं काम, क्रोध आदि के ऊपर विजय पाने वाला न्याय वृत्ति पुरुष कदापि पाप से लिप्त नहीं होता और प्रतिक्षण आत्म निर्मलता की ओर अग्रसर होता जाता है। इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों में से प्रत्येक वर्ण, ब्रह्मचारी, गृही, वानप्रस्थ एवम् सन्यास इन आश्रमों में से प्रत्येक आश्रम की अवस्था में अपने अपने धर्म के अनुसार गीता-ज्ञान में श्रद्धा रखता हुआ सफल मनोरथ हुआ करता है।

गीता में वर्णित उपदेशों का अनुष्ठान किसी भी दृष्टि से अशक्य नहीं है। पारिवारिक जीवन के अनुकूल और अननुकूल संयोग और वियोग एवम् अन्य सांसारिक इष्ट और अनिष्ट घटनाएँ गीता के रहस्य के ज्ञाता के लिए कसौटी के समान है जिस पर संघर्षण होने से उस की सैद्धान्तिक निष्ठा और दृढ़ता परीक्षित हो कर अधिक देदीप्यमान हो

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

जाया करती है। केवल सांसारिक कठिनाइयों और सङ्कटों से भयभीत होकर अरण्य की शरण लेने वाले पुरूषों के लिए वहाँ भी काम–क्रोध, राग–द्वेष, आदि आभ्यन्तर शत्रु आक्रमण करने वाले विद्यमान हैं, कामनाओं की शृंखला वहाँ भी उस को सुदृढ़ रूप से जकड़े रह सकती है क्यों कि बाह्य शरीर इन्द्रियों एवम् परिस्थितियों का ही नियंत्रण करने से यह अवश्यंभावी नहीं कि मन और आत्मा संयत हो जाय प्रत्युत आत्मिक पात्रता के अभाव में केवल उक्त बाह्य रूप मृतमण्डन कल्प ही है। इस में अणुमात्र भी विवाद नहीं हो सकता कि :—

"जिन सें बनी न कछु, करत मकानन में,
उन सें बनैगी करतूत कौन कानन में"

सारांश यह है कि प्रत्येक सामाजिक स्थिति का भी पुरुष गीता के रंग से सच्चा रंजित होकर उसी प्रकार के धार्मिक पद में स्थित कहा जा सकता है जिस प्रकार कि अपने मग में स्थित एक सच्चा साधु।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीमद्भगवद् गीता के सिद्धान्त प्रत्येक श्रेणी के मनुष्य की प्रत्येक अवस्था के लिए श्रेयस्कर हैं और उनका परिपालन पूर्ण रीति से उन की शक्ति के अंतर्गत ही है, बाह्य नहीं।

गीता का यह संदेश केवल हिन्दुओं या भारत वासियों ही के लिए नहीं है अपितु विश्व भर के मानव-मात्र के लिए है उसका संदेश है कि विषमता, भेद भाव, छल कपट, आदि दुष्कर्मा का त्याग करो तबही प्रेम उत्पन्न हो

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

सकता है तब ही विश्व व्यापी आर्थिक कठिनाइयाँ दूर हो सकती हैं, विश्व व्यापी संग्रामों का अन्त हो सकता है और अंत हो सकता है आजकल के उन झगड़े और बखेड़ों का जिन से देश में भीषण अशांति फैली हुई है। इच्छाओं को बढ़ाने ही से अशांति उत्पन्न होती है, एक दूसरे के मुख के ग्रास को छीन लेने की अभिलाषा होती है इस ही से सबल निर्बलों के रक्त को चूसकर पी जाने का प्रयत्न करते हैं किन्तु इस प्रकार कुछ समय तक वे भले ही सुखी जान पड़ें अंत में उनकी आत्मा में भयङ्कर अशांति उत्पन्न हो जाती है और उस ही का परिणाम नरक है।

इसी से गीता का विश्व भर के मानव-मात्र को विश्व-प्रेम, विश्व-शांति और साम्यदृष्टि का अमूल्य और शुभ संदेश है।

गीता का पाठ, अध्ययन और मनन करने वाले महाशयों को यह आवश्यक है कि वे पहले महाभारत को

गीता के जिज्ञासुओं से महाभारत पढ़ने का अनुरोध

एक बार अवश्य पढ़ लें, उसका अध्ययन करने से उनकी इन अनेकानेक जिज्ञासाओं का समाधान हो जायगा कि कौरव पाण्डव कौन थे? श्री कृष्णभगवान से उन का क्या सम्बन्ध था? भाई भाई में ऐसा भीषण युद्ध क्यों और कैसे हुआ? श्री कृष्णभगवान के होते हुए भी यह युद्ध क्यों नहीं रुक सका? श्री कृष्ण भगवान ने युद्ध न होने देने के लिए किस प्रकार और

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

कितना उद्योग किया ? होनहार किस प्रकार होकर ही रहती है, संसार ही में कर्मों का किस प्रकार प्रतिफल मिलता है ? इत्यादि। इस सब का ज्ञान तो महाभारत की विस्तृत कथाएँ ही पढ़ने से होसकता हैफिर भी पाठकों की सुविधा के लिए 'महाभारत का संक्षिप्त पूर्व वृत्तात' भी दे देना उचित समझा गया जिन को सम्पूर्ण महाभारत पढ़ने का अवसर न मिल सके उनको इस से भी कुछ न कुछ आभास मिल ही जायगा और फिर गीता के समझने में कठिनता नपड़ेगी।

गीता के महात्म्य के सम्बन्ध में अनेकानेक ग्रंथों में विशद रूप से लिखा गया है। उस सब का निचोड़ यही है

गीता-महात्म्य का सार

कि गीताभ्यास करने वाले पुरुष इस लोक में सुखी और कर्म से निर्लिप्त रहते हैं। गीता का अध्ययन घोर से भी घोर पापों से मुक्त कर देता है। जहाँ गीता की पुस्तक है जहाँ गीता का पाठ होता है वहाँ सब तीर्थ विद्यमान रहते हैं। जहाँ गीता का पठन पाठन होता है वहाँ स्वयम् श्री कृष्ण भगवान निवास करते हैं। जो नित्य गीता का पाठ करता है वह अनन्त कर्म करता हुआ भी जीवन्मुक्त ही समझा जाना चाहिए। वह शरीर त्यागने पर परम पद ही कोप्राप्त करता है। गीता सब उपनिषदों का सार है जिसेस्वयम् श्रीकृष्णभगवान् ने, युद्ध ऐसे विषमस्थल में अर्जुन को मोह हो जाने के कारण, सुनाया था और जिसके ही फल स्वरूप अर्जुन का मोह दूर हो गया था और सफलता मिली थी, फिर भला ऐसे मधुर गीतामृत से हम सब का कल्याण क्यों न होगा आवश्यकता है उसे नित्य नियम से

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

पाठ करने की, दत्तचित्त होकर अध्ययन करने की और उस के उपदेशों के अनुसार आचरण करने की। गीता के माहात्म्य का सार, उस के ज्ञानों का निचोड़ यही है कि हम विश्व-भर में गीता-ज्ञान का संदेश पहुँचा दें मानव-मात्र को उसके अमूल्य उपदेशों से परिचित करादें और विश्व में शांति-स्थापन करने के लिए, परस्पर स्नेह और प्रेम वृद्धि के लिए गीता-मय--जीवन के क्रियात्मक कार्य करने वाले उत्पन्न कर दें तब ही हम सब का और समस्त विश्व का कल्याण होगा।

गीता की रचना कृष्ण द्वैपायन भगवान वेद व्यास ने की थी अतः यह आवश्यक जान पड़ता है कि इन महा-

गीता कार कृष्णद्वैपायन वेद व्यास

भाग के सम्बन्ध में भी कुछ शब्द यहाँ लिख दिए जावें। वेद व्यास का जन्म बुन्देलखण्डान्तर्गत कालपी (जालौन) में हुआ था अब भी आप का जन्म स्थान जो कि यमुना और जोंधरगङ्गा के बीच में है व्यास क्षेत्र कहलाता है गुरु पूर्णिमा को प्रतिवर्ष आषाढ़ मास में वहाँ अब भी मेला लगा करता है। आप महर्षि पाराशर के पुत्र थे। द्वीप में जन्म होने के कारण आप द्वैपायन कहलाए और श्याम वर्ण होने के कारण कृष्ण द्वैपायन; वेदों का विभाग आपही के द्वारा हुआ था इससे आप वेद व्यास की पदवी से भी स्मरण किए जाने लगे। पुराणों की भी रचना आप हीने की थी और महाभारत नामक ग्रंथ-रत्न के भी, जिसका कि गीता एक अंश मात्र है, आप ही रचयिता थे।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

वेद व्यास के विशाल परिज्ञान का अब तक वारापार नहीं मिल सका है क्या देशी और क्या विदेशी सब ही विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से यह स्वीकार किया है कि वेद व्यास संसार के एक ऐसे अद्वितीय विद्वान हुए हैं जिन के समान न तो और कोई दूसरा हुआ था और न अब तक हुआ है। प्रत्येक विषय का आपने इतना पाण्डित्य पूर्ण वर्णन किया है कि विवश हो कर यह कहना पड़ता है कि वेद व्यास ही के अगाध ज्ञान को प्राप्त कर संसार ज्ञानी बन रहा है। आप की चमत्कारिक रचनाओं से हिन्दुओं का और भारतवर्ष का मस्तक ऊँचा हुआ है, आप की निष्पक्ष लेखन शैलीने अनेकों को आप का अनन्य भक्त बना लिया है और आपकी रचनाओं के महत्व के साथ इस देश का भी महत्व बढ़ा दिया है।

जिस देश में वेद व्यास के समान विद्वत्ता की पराकाष्ठा प्राप्त करने वाले विद्वान, असीम कल्पना शक्ति के सजीव उपासक कवि श्रेष्ठ, धर्म नीति, दर्शन आदि सब ही विषयों के पारंगत आचार्य्य और ज्ञान वृद्ध, अनुभव वृद्ध, वयोवृद्ध हुए हों वह देश, वह काल धन्य है जिस में आप उत्पन्न हुए थे और वे भी धन्य हैं जो आप के ज्ञान-भण्डारसे आजकल लाभ उठाते हैं

कृतज्ञता-ज्ञापन

इस का समर्पण हमारे परम आदरणीय, विद्याव्यसनी, उदारमना, श्री कृष्णभगवान के अनन्य भक्त श्री० पं० गुरुनाथ वेङ्कटेश बिवूर महोदय बी०ए०, सी० आई० ई०, आई० सी० एस०, जे० पी० डाइरेक्टर जनरल आफ् पोस्टस एण्ड टेलीग्राफस् ने सदयता पूर्वक सहर्ष स्वीकार करके इस अकिंचन को सर्वदा

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

के लिए आभारी बना दिया है अतएव अत्यन्त श्रद्धाभाव से उन को उन की कृपा के लिए मैं अनेकानेक धन्यवाद देता हूँ। यह हम सब हीं का सौभाग्य है कि वास्तविक गीता-मय-जीवन के ऐसे आदर्श नर रत्न के सत्सङ्ग का सुअवसर हम सब को प्राप्त है परमात्मा उन को दीर्घजीवी बनावे और उन के विमल यश की उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती रहे यही आंतरिक अभिलाषा है।

साहित्य सेवी महाराज कुमार श्री० बलभद्रसिंह जू देव राजा बहादुर दतिया राज्य (बुन्देलखण्ड) ने अपना पाण्डित्यंपूर्ण प्राक्कथन लिख कर अपनी गुण ग्राहकता का परिचय दिया है अतएव उन को भी मैं बिना धन्यवाद दिए नहीं रह सकता।

श्रद्धेय श्री० पं० गिरिजादत्त जी बाजपेयी एम० ए०; अवसर प्राप्त पोस्ट मास्टर, श्री० पं० महेशदत्त जी बाजपेयी बी० ए० सुपरिंटेंडेंट डाक विभाग का भी मैं अत्यन्त हीं अनुगृहीत हूँ, आप से इस सम्बन्ध में जितना प्रोत्साहन मिला वह लिखा नहीं जा सकता। श्री० पं० ठाकुरदास जी जैन बी० ए० और पं० दुर्गाप्रसाद जी समाधिया से भी समय समय पर सहयोग मिलता रहा है अतएव आप को तथा अपने उन सब मित्रों को जिन्होंने किसी भी प्रकार मुझे कुछ भी सहयोग दिया हो मैं धन्यवाद देता हूँ और हृदय से उनका उपकार मानता हूँ।

अपने सूक्ष्म परिमित ज्ञान के अतिरिक्त प्रस्तुत संस्करण की तैयारी में गीता विषयक अनेकानेक लेखों और ग्रंथों का मुझे निरन्तर अध्ययन करना पड़ा है उन में से गीता प्रेस गोरखपुर के गीताङ्क और स्व० लोकमान्य बाल

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

गङ्गाधर तिलक के कर्मयोग शास्त्र के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं अतएव उन सब ही महानुभावों को, जिन के किन्हीं भी विचारों से मुझे कुछ भी लाभ पहुँचा हो, मैं धन्यवाद देता हूँ और अत्यन्त ही विनम्र भाव से उन के उपकारों के ऋण को स्वीकार करता हूँ।

अब अन्त में, भूमिका समाप्त करने के पूर्व, मैं भगवान श्री कृष्ण से एक बार फिर प्रार्थना करता हूँ कि वे दयामय

एक अभिलाषा

कृपा कर ऐसा सुयोग दें जिससे 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (यह सब वास्तव में ब्रह्म है) के सत्यम् शिवम् और सुन्दरम् ज्ञान का संसार में भरपूर प्रचार हो। फल स्वरूप विश्व के मानव-मात्र गीता-मय-जीवन से परस्पर स्नेह उत्पन्न करके अपूर्व शांति प्राप्त करने में समर्थ हों। आशा है विज्ञ वाचक

'संत हंस गुण पय गहहिं, परिहरि वारि विकार'

के अनुसार इस से समुचित लाभ उठावेंगे। यदि इस से इस के उद्देश की किंचित् मात्र पूर्ति हो सकी और यदि एक भी व्यक्ति इससे गीता-मय-जीवन का वास्तविक अनुयायी बन सका तो यह परिश्रम सार्थक हो जायगा।

केशव-लीला-भूमि
टीकमगढ़ (बुन्देलखण्ड)
व्यास पूर्णिमा सं० १९९२ वि०
मङ्गलवार ता० १६-७-३५

विनयावनत—
गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर'

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

महाभारत

का

संक्षिप्त पूर्व वृत्तांत

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

श्री मद्भगवद्गीता महाभारत का एक अंश विशेष है। महाभारत हिन्दुओं का ऐतिहासिक मान्य ग्रंथ-रत्न है,

महाभारत

महाभारत का वेदों ही के समान भारतवर्ष में सम्मान है कितने ही लोग तो इसे पाँचवा वेद मानते हैं। महाभारत हिन्दुओं का वह इतिहास है जिसमें संक्षेप में कुछ पूर्व समय की कथाएँ और द्वापर के उन वीरों की विस्तृत कथाएँ लिखीं गईं हैं जिन से हमारा इतिहास बनता है महाभारत से पहिले का हमारा इतिहास अब तक अंधकार ही के गर्भ में है फिर भी हमारे लिए यह बड़े ही अभिमान और गौरव की बात है कि हमारे पास 'महाभारत' ऐसा ऐतिहासिक ग्रंथ-रत्न विद्यमान है।

महाभारत में वीरों की गाथाओं का तो वर्णन है ही किन्तु और भी अनेकानेक विषयों पर यथास्थान प्रकाश डाला गया है कहा तो यहाँ तक जाता है कि जो कथा महाभारत में नहीं वह कहीं भी नहीं है और जो अन्यत्र है वह सब महाभारत में है कोई कथा ऐसी नहीं जिसका मूल महाभारत न हो कोई धर्म ऐसा नहीं जिसका वर्णन महा-भारत में न आया हो।

पहिले इस देश का नाम आर्य्यावर्त था महा प्रतापी राजा भरत के समय से हम सब इसे भारतवर्ष कहने लगे हैं भरत के कुल के आदि पुरुष का नाम राजा ययाति था, ययाति के यदु और पुरु नाम के पुत्र थे, राजा ययाति अपने बड़े पुत्र यदु से कारण विशेष से अप्रसन्न हो गए थे और उनको राज्याधिकार से वंचित करके शाप देकर उन की

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

संतान को क्षत्रिय कुल से प्रथक् कर दिया था। यदु से यादव वंशी राजाओं की उत्पत्ति हुई और उस में भोज, वृष्णि अन्धक आदि वीरों ने कालान्तर में अपनी वीरताओं का यथेष्ट परिचय दिया योगिराज श्रीकृष्ण भगवान ने इसी वंश में जन्म लेकर इस की महत्ता बढ़ाई है।

ययाति के छोटे पुत्र का नाम पुरु था, राजा ययाति ने प्रसन्न होकर इन ही को अपना राज्य-सिंहासन दिया था इसी पुरु-वंश में दुष्यंत नाम के एक राजा हुए उन की शकुन्तला नाम की बड़ी ही विदुषी रानी थी राजा भरत इन महाभाग्य ही के पुत्र थे। भरत ने अपने पराक्रम का ऐसा परिचय दिया कि वे चक्रवर्ती राजा माने गये और पश्चात् उन के ही नाम पर उनका वंश भारत माना जाने लगा इसी भारत-वंश में कालान्तर में शान्तनु नाम के राजा हुए उन की रानी गङ्गादेवी भी शकुन्तला ही की तरह बुद्धिमती थी देवव्रत इन ही के पुत्र थे देवव्रत ही को भीष्म, भीष्मपितामह आदि की उपाधि थी आप बड़े ही विद्वान और धर्मशास्त्र तथा राजनीति में परायण थे और रण विद्या में तो उस समय के वे अद्वितीय वीर शिरोमणि माने गए हैं। गङ्गादेवी का जब शरीर नहीं रहा तो अकस्मात् सत्यवती नाम की एक धीवर-कन्या से शान्तनु का विवाह हुआ सत्यवती के चित्रागंद और विचित्रवीर्य्य दो पुत्र हुए इसके कुछ समय पश्चात् राजा शांतनु का देहान्त हो गया तब चित्रागंद राज्य-सिंहासन पर बिठलाए गए कुछ समय पश्चात् ही कुरु-क्षेत्र में गंधर्व से युद्ध करते हुए उनका शरीर पात हो गया तब विचित्र वीर्य्य ने राज्य-शासन

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

सँभाला, वे सात वर्ष के लगभग ही राज्य कर सके थे कि क्षयी रोग से उनका परलोक वास हो गया तब सत्यवती ने महात्मा भीष्म से राज्य करने या विवाह करके राज्याधिकारी उत्पन्न करने के लिए अनुरोध किया किन्तु वे अपनी पूर्व प्रतिज्ञा पर अटल रहे। तब कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास के वरदान से सत्यवती के दोनों पुत्र-बन्धुओं के धृतराष्ट्र और पाण्डु नाम के दो प्रथक् प्रथक् पुत्र हुए और एक दासी के भी विदुर नाम का पुत्र हुआ। इन तीनों पुत्रों का लालन पालन राज-भवन ही में बड़ी ही उत्तमता पूर्वक हुआ पश्चात् उन को प्रत्येक विषय की उच्च शिक्षा दी गई। धृतराष्ट्र जन्मान्ध थे अतएव पाण्डु ही को राज्य-सिंहासन मिला वे बड़े ही प्रतापशाली चक्रवर्ती राजा हुए।

महाराज पाण्डु के युधिष्ठिर, भीम; अर्जुन नामक पुत्र कुंती से और नकुल, सहदेव नामक पुत्र माद्री से उत्पन्न हुए और पाण्डव कहलाए।

धृतराष्ट्र के सौ पुत्र हुए, उन में निन्यानवे पुत्र और दुःशला नाम की कन्या गांधारी से और युयुत्सु नाम का पुत्र उप पत्नी से हुआ था इन में दुर्योधन सब से बड़ा था। दुर्योधन आदि सौ भाई कौरव कहेजाते थे।

हस्तिनापुर का राज्य पाण्डु के अधिकार में था क्यों कि धृतराष्ट्र जन्मान्ध होने के कारण उसके अयोग्य समझे गए थे पाण्डु की मृत्यु के पश्चात् भीष्म की सम्मति से राजा धृतराष्ट्र ही कार्य्य को सँभालने लगे और कौरव और पाण्डव दोनों ही राज्य भवन में रहने लगे। बाल्यकाल ही से पाण्डवों की वीरता का सिक्का कौरवों पर बैठ गया

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

था भीम इतना बली था कि कौरव उस से सदैव ही सशंकित रहते थे बाल क्रीड़ा ही में भीम अनेक उपद्रव किया करते थे। जब कौरव किसी पेड़ पर चढ़े होते तो भीम उसे हिला देते फल स्वरूप कौरव नीचे टपक पड़ते कभी दो तीन कौरवों का सिर वे अकेले ही लड़ा देते जल में तैरते समय नीचे देर तक डुबा देते इन सब का परिणाम यह हुआ कि दुर्योधन के हृदय में पाण्डवों के प्रति ईर्षाभाव उत्पन्न होगया और उसने भीम को दो बार विष देकर मार डालने का प्रयत्न किया किन्तु भाग्यवश भीम बच गए। यद्यपि कौरवों और पाण्डवों की हर प्रकार शिक्षा साथ ही साथ होती थी किन्तु पाण्डवों के बुद्धि कौशल का परिचय प्रत्येक अवसर पर मिला करता था जिसका कि विस्तृत वर्णन महाभारत में मिलता है।

युधिष्ठिर जब युवराज ही थे कौरवोंने अपने षड़यंत्र द्वारा धृतराष्ट्र के हृदय में उनके प्रति अविश्वास उत्पन्न कर दिया और अंतमें इन्हें लाह गृह की घटना के साथ वन-गमन करना पड़ा। वन में पाण्डवों ने हिडिम्ब वध, बक-वध, आदि करके अपनी वीरता का परिचय दिया और द्रोपदी स्वयंवर में तो उसी वीरता का परिचय देते हुए वे पुनः प्रगट होगए तब विवश हो धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को बुलवा कर उन्हें आधा राज्य दे दिया युधिष्ठिर धर्मावतार होने के कारण प्रजा प्रिय तो थे ही अतएव उनका सब ही ने हार्दिक स्वागत किया युधिष्ठिर ने इन्द्रप्रस्थ नामक नगर को बसाया और वहीं रहने लगे।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

पाण्डवों ने राजसूय-यज्ञ किया और वह बड़ी ही सफलता से सम्पन्न हुआ किन्तु उस कीसफलता ही उनके लिए हानिकारक हो गई। पाण्डवों का ऐश्वर्य दुर्योधन से देखा नहीं गया उनके सभा भवन की रचनाओं को देखकर और भ्रमवश अपना अपमानसमझ कर वह पाण्डवों से राज्य छीनने का फिर विचार करने लगा। हस्तिनापुर आने पर उसने अपने मामा शकुनि से परामर्श करके पाण्डवों को निमंत्रण देकर बुलवाया और जुआ खेलने के लिए आग्रह किया

पाण्डवों का राज सूय यज्ञ

द्यूत—क्रीड़ा

पाण्डवों के साथ द्रोपदी भी हस्तनापुर आई थी जुआ तो जुआ ही है उसमें बुद्धि ठिकाने नहीं रहती जब युधिष्ठिर सब राज्य पाट हार गए तो उन्होंने द्रोपदी को भी दाव पर रख दिया और हार गए अब दुर्योधन के हर्ष का ठिकाना नरहा उसने तुरन्त नौकरों को आज्ञा दी कि द्रोपदी को सभा में लाया जावे

द्रोपदीका दुर्योधन की सभा में बल पूर्वक पकड़ कर आना

किन्तु द्रोपदी रजस्वला थी इस से सभा में आने के लिए तैयार नहीं थी तब दुर्योधन ने दुःशासन से बल पूर्वक द्रोपदी को लाने के लिए कहा, दुःशासन द्रोपदी के बाल पकड़ कर घसीट कर सभा में ले आया उस समय सभा में जितने धर्मात्मा सभासद् उपस्थित थे सबने अपने अपने सिर नीचे कर लिए।

सभा में द्रौपदी के वस्त्रों को खींचकर उसे अपमानित करने की जो चेष्टाएँ की गई थीं उसे भारतवर्ष का बच्चा बच्चा

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

जानता है किन्तु किसी प्रकार उन की लाज बच गई और पाण्डवों सहित वे अपनी राजधानी इन्द्र प्रस्थ को लौट गई।

दुर्योधन ने फिर जुए का षड़यंत्र रचकर युधिष्ठिर को निमंत्रण दिया और फिर जुआ खेला गया। इस बार ऐसा

दूसरी बार द्यूत-क्रीड़ा

जुआ खेला गया कि हार जाने पर भाइयों सहित बारह वर्ष वन-वास और उस में एक बर्ष अज्ञात-वास करने का दाव था साथ ही यह भी था कि यदि अज्ञात-वास करने में परिचय मिल जायगा तो फिर बारह वर्ष फिर वन-वास करना पड़ेगा इस में पाण्डव फिर हार गए और द्रोपदी सहित वन को चले गए।

वनवास के समय में पाण्डवों ने वीरता पूर्वक अनेकानेक कठिनाइयों को पार किया, कितनों ही का उपकार

उत्तरा-अभिमन्यु विवाह

किया और हर प्रकार अपने प्रण का पालन किया अज्ञात-वास के समय में रूप और नाम बदल कर राजा विराट के यहाँ नौकरी की और वहाँ भी अज्ञात रूप में अपनी वीरता का यथेष्ट परिचय दिया अज्ञातवास का समय समाप्त हो जाने पर संयोगवश जब राजा विराट को उन के विषय में मालूम हुआ तो उन्हों ने अपनी पुत्री उत्तरा को अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के साथ बिवाह दिया इसी विवाह में जब अन्य राजाओं के अतिरिक्त श्री कृष्ण भगवान पधारे तब यह विचार किया गया कि अब पाण्डवों को किस प्रकार अपने राज्य को कौरवों से लेना चाहिए।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

सब राजाओं के परामर्श से पाण्डवों ने कौरवों के पास दूत भेजकर अपना सँदेश पहुँचाया और अपनी शक्ति भी एकत्रित करने के लिए यत्र तत्र दूत भेजे। श्री कृष्ण भगवान को लेने के लिए अर्जुन स्वयम् द्वारका गए इधर दुर्योधन को भी ये सब समाचार मिले अतएव उसने भी चारों ओर अपने दूत भेजे और द्वारकापुरी को वह स्वयम् ही चल दिया। संयोग से अर्जुन और दुर्योधन एक ही समय और एक ही साथ द्वारका और राजभवन में पहुँचे श्री कृष्ण महाराज उस समय सो रहे थे सोने के कमरे में दुर्योधन प्रथम पहुँच कर श्री कृष्ण के सिरहाने बैठ गया अर्जुन भी पहुँच कर पैरों की ओर बैठ गए, जब श्री कृष्ण जी जागे तो पहिले उन्होंने अर्जुन को और फिर दुर्योधन को देखा, कुशल प्रश्न के पश्चात् श्री कृष्ण के पूँछने पर दुर्योधन ने युक्तिपूर्वक अपने पहिले आने का संकेत करते हुए सहायता के लिए कहा, श्री कृष्ण भगवान ने कहा कि आप पहिले आए हैं और मैंने अर्जुन को पहिले देखा है इस से दोनों ही को सहायता के दो विभाग किए देता हूँ एक भाग में मैं अकेला हूँ किन्तु मैं न तो लडूँगा ही और न हथियार ही लूँगा और दूसरे भाग में मेरी नारायणी सब सेना है तुम दोनों ही एक एक कोई भी भाग ले सकते हो अर्जुन तुमसे छोटे हैं अतएव पहिले माँगने का अधिकार उन को है। अर्जुन ने केवल श्री कृष्ण भगवान को माँग लिया और दुर्योधन ने हर्ष पूर्वक नारायणी सेना को स्वीकार कर लिया।

पाण्डवों का दूत भेजना

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

जब वार वार दूत भेज कर और कौरवों को यह संदेश भी पहुँचा कर कि हम पाँचों पाण्डव केवल पाँच ग्राम पाजाने पर भी संतोष कर लेंगे पाण्डवों की बात कौरवों ने न मानी तब एक बार अंत में श्री कृष्ण भगवान ने स्वयम् जाकर कौरवों को समझाया अन्य सब ही ने श्री कृष्ण भगवान के उपदेशों की बड़ी ही प्रशंसा की किन्तु दुर्योधन ने उसे स्वीकार नहीं किया यहाँ तक कि श्री कृष्ण भगवान ही को क़ैद कर रखने की वे मंत्रणा करने लगे और सुई की नोंक बराबर भी भूमि बिना युद्ध किए देने को तैयार न हुए तब विवश हो श्री कृष्ण भगवान को युद्ध ही का निमंत्रण देना पड़ा और वह भी केवल एक सप्ताह की अवधि का।

पाण्डवों का कौरवों को युद्ध निमंत्रण

श्री कृष्ण भगवान ने उपलव्य नगर में आकर सब वृत्तांत पाण्डवों को सुनाया और युद्ध के लिए ही तैयार होने को कह दिया। पाण्डवों ने अपनी एकत्रित सात अक्षौहिणी सेना के द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, शिखंडी, सात्यकी, चेकितान और भीम ये सात सेनापति बनाए। इन में प्रधान सेनापति अधिक वाद विवाद होने के पश्चात धृष्टद्युम्न ही को बनाया गया।

पाण्डवों की सेना और सेनापति

कौरवों की ग्यारह अक्षौहिणी सेना के ग्यारह सेनापति हुए उन के नाम कृप, द्रोण, शल्य, जयद्रथ, काम्बोज नरेश

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

कौरवों की सेना और सेनापति

सुदक्षिण, भोजराज कृतवर्म्मा अश्वत्थामा, कर्ण, भूरिश्रवा, शकुनि, और बाल्हिक थे। इन के प्रधान सेनानायक सब ही की सम्मति से भीष्म पितामह हुए। भीष्म पितामह ने सेनानायक होते समय यह शर्त करवा ली थी कि वे अवसर आने पर भी पाण्डवों को अपने हाथ से न मारेंगे पर अन्य सहस्रों सैनिकों को मारने में आगा पीछा न करेंगे।

कुरुक्षेत्र में युद्ध की तैयारी

कुरुक्षेत्र का मैदान प्रायः पाँच योजन के विस्तार में और मण्डलाकार था उस का आधा भाग कौरवों के और आधा भाग पाण्डवों के अधिकार में था। पाण्डवों की सेना का मुख पूर्व-ओर और कौरवों की सेना का मुख पश्चिम-ओर था। कौरवों की सेना पहले ही से मैदान में आ डटी थी।

युद्धारम्भ

दुर्योधन की ओर से उलूक नामक दूत आकर पाण्डवों को पुनः युद्ध के लिए अप शब्दों में प्रेरित कर गया था। अमावस्या के दिन नित्य कर्मों से निवृत्त हो दोनों ओर के वीरों ने युद्धारम्भ का बिगुल बजा दिया युद्ध प्रारम्भ होने ही को था कि धर्मात्मा युधिष्ठिर अस्त्र शस्त्रों को छोड़ कर अनुजों और श्रीकृष्ण समेत कौरवों की सेना में घुस गए और भीष्मपितामह से युद्ध के लिए आज्ञा माँगी उन्होंने आशीर्वाद देते हुए आज्ञा दे दी इसी प्रकार गुरुवर द्रोणाचार्य और कृपाचार्य से भी आज्ञाएँ उन्हें मिलगई। पश्चात् हाथियों की चिंघाड़ों, घोड़ों

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

की हिनहिनाहटों, धनुष की प्रत्यंचाओं की टङ्कारों, हथियारों की झङ्कारों, वीरों की हुंकारों, एवम् युद्ध के जुझाऊ बाजों और शंखों की ध्वनियों से कुरुक्षेत्र का मैदान गूँज उठा।

कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास ने जब युद्ध को आरम्भ होता हुआ समझ लिया तब उन्होंने धृतराष्ट्र के पास जाकर कहा

संजय को दिव्य दृष्टि का वरदान

कि "राजन युद्ध प्रारम्भ हो रहा है यदि आप को उसे देखने की इच्छा हो तो मैं आपको दिव्य चक्षु दे दूँ" धृतराष्ट्र ने कहा "हे ब्रह्मर्षि! जीवन भर अन्धे रहकर अन्त समय में अब अपनी जाति वालों का बध और सर्वनाश देखने का मैं इच्छुक नहीं हूँ, किन्तु युद्ध का ठीक ठीक वृत्तांत जानता रहना चाहताहूँ यदि आप कृपा कर इसकी कोई व्यवस्थ्या कर सकें तो अत्युत्तम हो तब वेद व्यास जी ने धृतराष्ट्र के सारथी संजय को दिव्य दृष्टि दे कर वरदान दे दिया कि युद्ध में जो कुछ भी होगा गुप्त या प्रगट, दिन में या रात में, वह तुमसे छिपा न रहैगा और न तुम्हारे देखने में कोई अस्त्र शस्त्र हो बाधक होंगे तथा तुम्हें परिश्रम और थकावट भी अनुभव न होगी। इस प्रकार धृतराष्ट्र की इच्छा की पूर्ति कर के व्यास भगवान चले गए पश्चात् युद्ध आरम्भ होने पर पुत्र-स्नेह के कारण धृतराष्ट्र ने संजय से युद्ध का समाचार पूँछा संजय ने जो कुछ वृत्तांत कहा वही श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णन किया गया है।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

गीता-गौरव

श्री मद्भगवद्गीता के मूल श्लोक,

सरल छंदोबद्ध अनुवाद,

शब्दार्थ और टिप्पणियाँ

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

श्रीगणेशायनमः

गीता-गौरव

पहिला अध्याय

धृतराष्ट्र :—

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥१॥

(१)

धर्मक्षेत्र इस कुरुक्षेत्र में, युद्ध-निमित्त हुए एकत्र;
क्या कर रहे सुनाओ संजय ! मेरे और पाण्डु के पुत्र ?

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

संजयः—

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥२॥

(२)

व्यूह-रूप में पाण्डु-सुतों की, सैन्य देख दुर्योधन-भूप;
जाकर निकट द्रोण के राजन्! लगा बोलने यों अनुरूप।

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥३॥

(३)

गुरो! देखिये पाण्डु-सुतों का, वह विशाल अति सुभट-समूह;
शिष्य आप के द्रुपद-पुत्रने, कैसा रचा सैन्य का व्यूह।

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥४॥

(४)

इस में महा धनुर्धर सब हैं, राजन! अर्जुन, भीम समान;
तथा और ये महारथी हैं, द्रुपद, विराट्, बली युयुधान।

व्यूह=युद्ध करते समय सेना को व्यवस्थित रूप में खड़ा करने को व्यूह कहते हैं, इस के अनेक भेद हैं यथा दण्ड-व्यूह, वज्र-व्यूह आदि। पाण्डवों की सेना वज्र-व्यूह ही में खड़ी की गई थी।

अनुरूप=यह बात, इस प्रकार।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

धृष्टकेतु श्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित्कुन्ति भोजश्च शैब्यश्च नरपुंगवः ॥५॥

(५)

धृष्टकेतु से चेकितान से, काशिराज से वीर, महान;
हैं समुपस्थित, पुरुजित् कुंती, भोज-शैब्य से शौर्य्य निधान ।

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौ जाश्च वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥६॥

(६)

युधामन्यु से पौरुषशाली, और उत्तमौजा से वीर;
द्रौपदेय अभिमन्यु सहित सब, ये हैं महारथी रणधीर ।

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्नि बोधद्विजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्यसंज्ञार्थं तानब्रवीमि ते ॥७॥

(७)

अपने दल में भी हे द्विजवर !, सेनापति जो हैं बलधाम;
सूचनार्थ उन के भी क्रमशः, गुरो ! यहाँ लेता हूँ नाम ।

द्रौपदेय=द्रौपदी के पाँचो सुत अर्थात (प्रतिबिन्ध्य, सुतसोम, श्रुत-कीर्ति, शतानीक और श्रुतसेन)

सूचनार्थ=स्मरण कराने के लिए ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः ।
अश्वत्थामाविकर्णश्च सौमदत्ति स्तथैवच ॥८॥

(८)

गुरो! आप, श्री भीष्म पितामह, युद्ध-विजय-कर्त्ता-कृप, कर्ण,
अश्वत्थामा सोमदत्त सुत, और वीर शार्दूल-विकर्ण ।

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥६॥

[६]

अस्त्र-शस्त्र-युत अन्य वीर भी, करते हुए युद्ध अनुराग;
हैं समुपस्थित लिए हमारे, जीवन-ममता का कर त्याग ।

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥१०॥

[१०]

भीष्म-पितामह से रक्षित हैं इससे अपनी सैन्य अजेय,
भीम-बली के संरक्षण से भी पाण्डव की सेना जेय ।

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षंतु भवन्तः सर्वएवहि ॥११॥

[११]

गुरो! प्रवेश मार्ग-भागों में, संस्थित हो कर सर्व प्रकार;
भीष्म पितामह की रक्षा का, लो तुम अपने ऊपर भार ।

वीरशार्दूल=वीरों में श्रेष्ट ।
अजेय=जो जीती न जा सके ॥ जेय=जो जीती जा सके ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

तस्य संजनयन्हर्षं कुरु वृद्धः पितामहः।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान् ॥१२॥

(१२)

करते हुये उसे आनंदित, महा प्रतापी वृद्ध—सुजान;
सिंहनाद कर लगे बजाने, शंख पितामह भीष्म—महान।

ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः।
सहसैवाभ्यहन्यंत स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥१३॥

(१३)

आनक-भेरी-पणव-गोमुखा, शंखों की फिर हुई धुकार;
जिसका तुमुल शब्द धरणी में, नभ में भी भर गया अपार।

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यंदने स्थितौ।
माधवः पांडवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥१४॥

(१४)

बैठे हुये सु-रथ पर जिस में, जुते हुए थे घोड़े श्वेत;
अर्जुन ने भी शंख बजाया, माधव—सहित प्रमोद—समेत।

पांचजन्य हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः।
पौंड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः ॥१५॥

(१५)

'पाचजन्य' माधव ने लेकर, 'देवदत्त' अर्जुन ने और;
'पौंड्र' नाम का शंख बजाया, भीम बृकोदर ने निज ठौर।

आनक=मृदंग। भेरी=नगारा, बड़ा ढोल, दुंदमी। पणव=ढोल।
गोमुखा=रणसिंहा, नरसिंहा। तुमुल=ऊंचा, महान।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

अनंतविजयं राजा कुतीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥१६॥

[१६]

'अनन्त-विजयी' धर्मराज ने, तथा नकुल ने शंख 'सुघोष';
'मणि पुष्पक' सहदेव वीर ने, बजा दिया तब हे मति कोष !

काश्यश्च परमेष्वासः शिखंडी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥१७॥

[१७]

काशीराज, विराट्, सुधन्वा और शिखण्डी सात्यकि धीर;
विजयी धृष्टद्युम्न आदिक भी, लगे बजाने शंख सुवीर ।

द्रुपदोद्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान्दध्मुः पृथक्पृथक् ॥१८॥

(१८)

द्रुपद, द्रौपदी के पाँचों सुत, और सुभद्रा सुत बलवन्त;
अन्य नृपों युत पृथक् पृथक् सब, लगे बजाने शंख तुरन्त ।

सघोषोधार्त्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥१९॥

(१९)

शंख-ध्वनि का महा शब्द वह, हुआ धरा-नभ में विस्तीर्ण;
उस भीषण-रव से हृदयस्थल, कुरु-पुत्रों का हुआ विदीर्ण ।

विस्तीर्ण=विस्तार ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

अथव्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्त्तराष्ट्रान्कपिध्वजः ।
प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पांडवः ॥२०॥

(२०)

तदनन्तर बिलोक कर अर्जुन, युद्धस्थित वह कौरव-भीर;
धनुष उठाकर हृषीकेश से; बोला वह रणधीर सुवीर।

अर्जुनः—

हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥२१॥

(२१)

दुर्योधन की और हमारी, दोनों सेनाओं के मध्य;
मेरा रथ संस्थापित कीजे, देखूँ कौन कौन हैं वध्य।

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।
कैर्मयासह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे ॥२२॥

(२२)

समर क्षेत्र में किन किन से है, अब हमको करना संग्राम;
जो जो आये हैं लड़ने को, उन को मैं देखूँ घनश्याम।

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः ।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥२३॥

(२३)

दुर्योधन-दुर्मति का ईप्सित, करने आये वीर महान;
युद्धक्षेत्र में उनको देखूँ, एक बार दे कर के ध्यान।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

संजयः—

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥२४॥

[२४]

अर्जुन के ऐसा कहने पर मधुसूदन ने हे नृपराज!;
दोनों सैन्यों के मध्यस्थल में कर दिया खड़ा रथ साज।

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान्कुरूनिति ॥२५॥

[२५]

भीम-द्रोण आदिक वीरों के सम्मुख ही बोले भगवान;
अर्जुन! भली प्रकार देख ले, एकत्रित कौरव सन्तान।

तत्रा पश्यत्स्थितान्पार्थः पितॄनथपितामहान्।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄ न्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ॥२६॥
श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि।
तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान् ॥२७॥
कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत।

अर्जुनः—

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥२८॥
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥२९॥
गाण्डीवं स्त्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥३०॥

नृपराज=धृतराष्ट्र।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(२६)

उभय दलों में तब अर्जुन ने, देखे गुरु, पितामह, पुत्र;
पौत्र और भ्रातागण मातुल, श्वसुरादिक सम्बन्धी मित्र।

(२७)

सब कुटुम्बियों को विलोक वह, करुणा में हो गया निमग्न;
बोला वचन कृष्ण से सत्वर, दुख से हो अति ही उद्विग्न।

अर्जुनः—

(२८)

आयोधन करने को उद्यत, यहाँ देख कर स्वजन-समाज;
होते अङ्ग शिथिल हैं मेरे, और सूखता मुख यदुराज !।

(२९)

रोम-हर्ष उद्गत होता है, कम्पित होती देह अनन्त;
गिरता है गाण्डीव हाथ से त्वचा-दाह होता अत्यंत।

(३०)

संस्थित होने की समर्थता, कृष्ण ! हुई जाती है नष्ट;
लक्षण सब विपरीत बन रहे, और हो रहे शकुन निकृष्ट।

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव।
न च श्रेयोनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥३१॥
न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।
किन्नो राज्येन गोविंद किं भोगैर्जीवितेन वा ॥३२॥

३१

स्वजनों का वध कर के केशव ! नहीं भला होता है इष्ट;
हम को नहीं लालसा जय की, सुखद नहीं है युद्ध निकृष्ट।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(३२)

नहीं मुझे सुख-राज्य चाहिये, जीने में भी आती लाज;
राज्य-भोग की सदा लालसा, की जाती है जिन के काज।

येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥३३॥

(३३)

वे ही धन प्राणों की ममता, त्याग, कर रहे रण स्वीकार,
पिता पुत्र आचार्य्य पितामह, अपना ही सब है परिवार।

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः संबंधिनस्तथा ॥३४॥

(३४)

तथा श्वसुर, मातुल, श्यालादिक, सम्बन्धी हैं और अनेक;
मारें भले मुझे ये इनका, नहीं चाहता मारण एक।

एतान्न हंतुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।
अपित्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥३५॥

(३५)

यदि समस्त तीनों लोकों का, राज्य-भोग पाऊँ उपहार,
तो भी इन हाथों से माधव! करूँ न मैं इन का संहार।

एक=अद्वितीय। स्यालादिक=साले।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ।
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥३६॥

(३६)

इन का वध कर के क्या शुभ फल, पाऊँगा बतलाओ आप;
हे मधुसूदन! केवल मेरे, हाथ लगेगा उत्कट-पाप।

तस्मान्नार्हा वयं हंतुं धार्त्तराष्ट्रान्स्वबांधवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥३७॥

(३७)

इस से इन कुरु-संतानों को, नहीं मारना हमको योग्य;
स्वजन-बंधु-समुदाय मार कर, मैं क्या पाऊँगा सुख भोग्य।

यद्यप्येते न पश्यंति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥३८॥

(३८)

यद्यपि लालच वश से इनको, अभी नहीं इसका है ज्ञान;
वंश–नाश बिद्रोह मित्र का, करता महा–पाप–उत्थान।

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥३९॥

(३९)

जान बूझ कर फिर मधुसूदन! वंश–नाश के पाप कराल;–
–करने से क्यों विमुख न होऊँ, बतलाओ मुझको यदुपाल!

उत्कट=घोर। स्वजन-बन्धु-समुदाय=अपने बन्धुजनों को।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

कुलक्षये प्रणश्यंति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥४०॥

(४०)

वंश-नाश होने से केशव ! धर्म सनातन होते अस्त;
धर्म अस्त होने से कुल को, कर लेता अधर्म है ग्रस्त ।

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यंति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥४१॥

(४१)

कुल-वधुयें दूषित होती हैं, होने से अधर्म का ग्रास;
फिर होता वर्णों का संकर, होने से वधु-दोष-विकास ।

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतंति पितरो ह्येषां लुप्तपिंडोदकक्रियाः ॥४२॥

(४२)

संकर-सुत होने से होता, पिण्डोदक कर्मों का नास;
इससे कुल-हतकों के कुलका, होता है नरकों में वास ।

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ।
उत्साद्यंते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥४३॥

(४३)

कुल-हतकों के ऐसे होते, संकर-कारी दूषित कर्म,
जिससे होते लोप मूल से, कुल के और जाति के धर्म ।

वर्णों का संकर=एक वर्ण की स्त्री और दूसरे वर्ण के पुरुष से अधर्म से जो संतान उत्पन्न होती है उसे वर्ण संकर कहते हैं।
कुल-हतकों=कुल घाती ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

उत्सन्न कुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥४४॥

(४४)

हे मधुसूदन ! हो जाता है, जिन के उन धर्मों का नास;
सुनते हैं निश्चय ही उनका, होता है नरकों में वास ।

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हंतुं स्वजनमुद्यताः ॥४५॥

(४५)

कितना बड़ा पाप करने को, उद्यत हुआ हाय यदुराज !;
राज्य-भोग के लिए खड़ा हूँ, स्वजन-घात करने को आज ।

यदि मामप्रतीकारम शस्त्रं शस्त्रपाणयः ।
धार्तराष्ट्रा रणेहन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥४६॥

(४६)

कौरव–गण सुतीक्ष्ण शस्त्रों से, ले लें मुझ अशस्त्र के प्राण;
बना रहूँ मैं विमुख युद्ध से, तो हो मेरा अति कल्याण ।

संजयः—

एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥४७॥

(४७)

राजन ! अर्जुन ऐसा कह कर, तज कर शरयुत धनुष कठोर;
निज रथ में शोकाकुल मन से, जा बैठा पीछे की ओर ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

दूसरा अध्याय

संजय:—

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदंतमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥१॥

तैसी करुणा से सम्पूरित, करते हुये अश्रु-गणपात;
अतिशय-खेद-भरित, अर्जुन से, राजन् ! अच्युत बोले बात ।

श्री भगवान:—

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्त्तिकरमर्जुन ॥२॥

(२)

हे अर्जुन ! इस विषमस्थल में, हुआ कहाँ से तुम्हें विमोह;
आर्यों को अनुचित अकीर्ति-कर, करने वाला नरका रोह ।

क्लैव्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥३॥

(३)

कायरता मन में मत लाओ, करो हृदय दुर्बलता दूर;
अर्जुन ! उठो धनुष लो कर में, तुम को उचित नहीं यह, शूर ! ।

अच्युत–जिसका किसी काल में भी नाश न हो अर्थात् भगवान कृष्ण ।
नरका रोह=नरक ले जाने वाला ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

अर्जुन:—

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥४॥

(४)

पूजनीय हैं भीष्म पितामह, सु–गुरु द्रोण भी उसी प्रकार;
कैसे इनके ऊपर रण में, कृष्ण! करूँगा बाण–प्रहार।

गुरून् हत्वा हि महानुभावान् श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुंजीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ॥५॥

(५)

अच्छा है सद्गुरु–हिंसा से, बचकर करना भिक्षा योग;
कामी गुरु–हिंसा कर भोगूँ; रक्त–विलिप्त यहाँ भी भोग।

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।
यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥६॥

(६)

नहीं जानता कौन श्रेय है, 'मैं जीतूँ' या 'कौरव–वृन्द';
जिन्हें मार जीना न चाहता, वे ही स्थित सम्मुख यदुचन्द!।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥७॥

श्रेय=श्रेष्ट, अच्छा।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(७)

हुआ दैन्य से हत स्वभाव है, चित्त धर्म में हुआ विमूढ़;
शिष्य जान कर श्रेय बताओ, तुम्हें पूँछता सर्व-निगूढ़।

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम ।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥८॥

(८)

पृथिवी और देव लोकों का, पाने पर भी राज्य प्रकृष्ट;
शोक दूर हो जिस से मेरा, होता नहीं यत्न वह दृष्ट।

संजयः—

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतपः ।
न योत्स्य इति गोविंदमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥९॥

(९)

अरिजित् गुड़ाकेश ने कह कर, हृषीकेश से उक्त प्रकार;
'नहीं लड़ूँगा कृष्ण!' इस तरह, कह मौनित्व लिया फिर धार।

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदंतमिदं वचः ॥१०॥

दैन्य=हृदय की दीनता जो आत्मज्ञान के अभाव में उत्पन्न हो जाती है, ऐसी कृपणता को दीनता ही कहते हैं।

हत स्वभाव=क्षात्रिय स्वभाव दब गया है।

प्रकृष्ट=श्रेष्ट। गुड़ाकेश=अर्जुन। हृषीकेश=भगवान कृष्ण।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(१०)

दोनों दल के मध्य-भाग में, होते हुए अतीव विषण्ण;
अर्जुन से बोले हे भारत, करते हुये हास सा कृष्ण।

श्रीभगवान:—

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचंति पंडिताः ॥११॥

(११)

शोच अशोच्यों का करते हो, विज्ञों का सा करते वाद;
पण्डित, जीवित और मरों का, करें नहीं कुछ शोच विषाद।

न त्वेवाहं जातु नाशं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥१२॥

(१२)

इन सब राजाओं का मेरा, और तुम्हारा था सद्भाव;
पूर्व काल में अब से आगे भी कदापि होगा न अभाव।

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहांतरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥१३॥

(१३)

जैसे देही कौमारादिक, तीन दशा पाता है, वीर!;
अन्य देह पाता भी तद्वत्, इस में मोह न करते धीर।

विषण्ण=खेदित। भारत=धृतराष्ट्र।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

मात्रा स्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥१४ ॥

(१४)

इन्द्रिय-भोग उष्ण शीतल हैं, करने वाले दुख-आनन्द;
ये अनित्य आते जाते हैं, इन को सहन करो, हरिनन्द !

यं हि न व्यथयंत्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥१५॥

(१५)

जिस मानव को कभी न ये सब, करते पीड़ा की उत्पत्ति;
सुख दुख सदा बराबर जिस को, पाता वही मोक्ष-सम्पत्ति ।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥१६॥

(१६)

असद्वस्तु अस्तित्व नहीं है, नहीं भाव हो सकता नष्ट;
तत्वदर्शियों ने विचार कर, यही कहा सिद्धांत प्रकृष्ट ।

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित् कर्तुमर्हति ॥१७॥

(१७)

आत्मा वही नित्य है अर्जुन !, जिस से सर्व विश्व है व्याप्त;
इस अव्यय के व्यय करने की, क्षमता नहीं किसी को प्राप्त ।

हरिनन्द=इन्द्र पुत्र अर्जुन । तत्वदर्शियों=तत्व के जान ने वालों ने ।
क्षमता=सामर्थ्य । प्रकृष्ट=श्रेष्ठ ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

अंतवंत इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युद्ध्यस्व भारत ॥१८॥

(१८)

अप्रमेय, अविनाशी देही, यह आत्मा अव्यय अभिराम;
इस की देहें सब अनित्य हैं, इस से करो पार्थ ! संग्राम ।

य एनं वेत्ति हंतारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हंति न हन्यते ॥१९॥

(१९)

कोई इसं को कहते हन्ता, कोई रहे इसे 'हत' मान;
पर वह मरता है न मारता, नहीं उन्हें दोनों को ज्ञान ।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यःशाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥२०॥

(२०)

न वह जन्मता और न मरता, हो कर हो न, नहीं यह बात;
अज पुराण शाश्वत यह आत्मा, न तनु नाश से इसका घात।

वेदाऽविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हंति किम् ॥२१॥

अप्रमेय=प्रमाण रहित । हन्ता=मारने वाला ।
हत=वध किया हुआ । पुराण=पुराना ।
शाश्वत=सदा रहने वाला ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(२१)

अज अविनाशी नित्य निर्विकृत, इसे जानता है जो व्यक्ति;
वह मर वाता किस को कैसे; किसे मारता, अरिजित् शक्ति !

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥२२॥

(२२)

जीर्ण-पटों को तज कर जैसे, मानव नये पहिनते वास;
देह पुरातन, तज कर आत्मा, तैसे नव-तनु करे निवास ।

नैनं छिंदंति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयंत्यापो नशोषयति मारुतः ॥२३॥

(२३)

जला नहीं सकता है पावक, नहीं शस्त्र कर सकते छिन्न;
शुष्क नहीं कर सकता मारुत, नहीं कर सके जल भी क्लिन्न ।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥२४॥

(२४)

इससे नहीं योग्य दाहन के, भेद-शेष-क्लेदन के और;
है अविचलित सनातन सुस्थिर, सब में व्यापक है सब ठौर ।

निर्विकृत=अपरिणामी, निर्विकार ।
अरिजित शक्ति=शत्रुओं को जीतने वाली है शक्ति जिसकी ।अर्थात अर्जुन ।
वास=वस्त्र । क्लिन्न=आर्द्र ।
दाहन=जलाने । भेद=काटने । शोष=सुखाने । क्लेदन=गीला करने ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥२५॥

(२५)

यह अचिन्त्य अप्रकट कहाता, हे अर्जुन ! है यह अविकार;
इसे समझ कर ऐसा ही तुम, सोच करो मत किसी प्रकार ।

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैनं शोचितुमर्हसि ॥२६॥

(२६)

अथवा पार्थ ! मानते हो यदि, इसके जन्म-मृत्यु को नित्य;
तौ भी योग्य नहीं है करना, किसी तरह का शोच कु-कृत्य ।

जातस्य हि ध्रुवोमृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे नत्वं शोचितुमर्हसि ॥२७॥

(२७)

क्यों कि जन्म वाले का मरना, मरने वाले की उत्पत्ति;
निश्चित है, इससे तुम तज दो, सर्व शोक को अतुलित शक्ति!

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥२८॥

(२८)

थे अव्यक्त पूर्व में, तैसे, होंगे फिर जीवन पश्चात;
हुए मध्य में व्यक्त, इसलिए, करते क्यों विलाप यह तात?

अतुलित शक्ति=बहुत ही अधिक शक्ति वाले अर्थात् अर्जुन ।
अव्यक्त=अप्रकट, अपरिचित । तात=अर्जुन ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ।
आश्चर्यवच्चैनमन्यंशृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥२९॥

(२९)

कोई अचरज के सम देखे, कोई कहता सुनता और;
सुन कर भी कोई न जानता, भेद, अनोखा आतम-ठौर।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥३०॥

(३०)

सब के देहों में यह देही, है अवध्य ही निस्सन्देह;
इससे नहीं चाहिए करना, इनका शोच सुनो मति-गेह।

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकंपितुमर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥३१॥

(३१)

अपना धर्म देख कर भी तो, योग्य नहीं है, करुणा-मर्म;
क्योंकि नहीं है धर्म-युद्ध से, बढ़ कर क्षत्रिय को शुभ-कर्म।

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभंते युद्धमीदृशम् ॥३२॥

(३२)

बिना उपायों के ही अर्जुन!, पाया खुला स्वर्ग का द्वार;
पुण्यवन्त क्षत्रिय ही पाते, ऐसा रण कल्याणागार।

मतिगेह=अर्जुन। अवध्य=देहों के नाश होने से यह नाश नहीं होता।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

अथ चेत्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ।
ततः स्वधर्मं कीर्तिंच हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥३३॥

(३३)

अर्जुन ! यदि तुम नहीं करोगे, यह शुभ धर्म-युक्त संग्राम;
तो स्वधर्म-युत-कीर्त्ति-नाश कर, पाओगे पापों का ग्राम ।

अकीर्तिंचापि भूतानि कथयिष्यंति तेऽव्ययाम् ।
संभावितस्य चा कीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥३४॥

(३४)

और तुम्हारे महा अयश का, कथन करेंगे ये सब लोक;
अधिक मृत्यु से भी है अपयश, सब को सुनो, भरत नृप-तोक !

भयाद्रणादुपरतं मंस्यंते त्वां महारथाः ।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥३५॥

(३५)

जो जन तुम को मान रहे हैं, शूर-वृन्द में श्रेष्ठ प्रकाम;
'वे ही सब मानेंगे ऐसा-भय से छोड़ दिया संग्राम'।

अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः ।
निंदंतस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥३६॥

(३६)

निन्दा करते हुए तुम्हारी, इस समर्थता की सब लोक;
वहु अवाच्य बोलेंगे अर्जुन ! क्या इससे बढ़कर है शोक ?

पापों का ग्राम=पापों का समूह । भरत नृप-तोक=भरत राजा की संतान अर्थात् अर्जुन । प्रकाम=श्रेष्ठ । अवाच्य=दुर्वाक्य ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौंतेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥३७॥

(३७)

मरण हुआ तो स्वर्ग मिलेगा, जीते तो पृथिवी का भोग;
इससे उठो करो दृढ़ हो कर, अर्जुन! लड़ने का उद्योग।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥३८॥

(३८)

लाभ-हानि को, हर्ष दुःख को, विजय पराजय को सम मान;
हो यदि निरत युद्ध में तो फिर, पाप न होगा, शौर्य-निधान।

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु ।
बुद्धयायुक्तो यथा पार्थ कर्मबंधं प्रहास्यसि ॥३९॥

(३९)

सांख्य विषय में बुद्धि कही यह, कर्मयोग में सुनो सराग;
जिससे हो कर युक्त, करोगे, कर्मों के बन्धन का त्याग।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥४०॥

(४०)

थोड़ा करना भी न विफल है, नहीं प्रत्यवाय का दोष;
इसी धर्म का अंश मात्र भी, करता है भय का उच्छोष।

निरत=लग्न। सांख्य विषय में=आत्म अनात्म विवेक विषय में।
प्रत्यवाम=विधि के उल्लंघन करने का पाप। उच्छोष=नाश।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनंदन।
बहुशाखाह्यनंताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥४१॥

(४१)

बुद्धि एक है मुमुक्षुओं की, व्यवसायात्मक जो है उक्त;
काम्य-कर्मियों की अनेक हैं, मतियाँ बहु-शाखा-संयुक्त।

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदंत्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥४२॥

(४२)

वेद-वाद ही में जो रत हैं, 'नहीं स्वर्ग से कुछ उत्कृष्ट';
ऐसा जो कहते हैं अर्जुन, वे हैं अति अनभिज्ञ निकृष्ट।

कामात्मानःस्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥४३॥

(४३)

जो मानव करते रहते हैं, भोगैश्वर्यों की अभिलाष;
उन का कभी नहीं होता है, व्यवसायात्मक बुद्धि-विकास।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥४४॥

(४४)

जिन मनुजों का मन रहता है, भोगैश्वर्यों में संयुक्त;
व्यवसायात्मक बुद्धि उन्हीं की, होती नहीं समाधि प्रयुक्त।

व्यवसायात्मक=मुमुक्षुओं के करने योग्य कर्म में जो बुद्धि है उसको व्यवसायात्मिका कहते हैं। व्यवसायात्मक=निश्चयात्मिक।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥४५॥

(४५)

तीन गुणों से युक्त वेद हैं, अर्जुन! हो तू त्रिगुण-विहीन;
त्यों निर्द्वंद, अकामी, आत्मा-दर्शी, योग-क्षेम-अलीन।

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥४६॥

(४६)

सरिता कूप आदि से जैसे, निज इच्छित भर लेते नीर;
तैसे ही इन वेदों में से, लेवें सात्विक-कर्म-सु-धीर।

कर्मण्येवाऽधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥४७॥

(४७)

तुम अधिकारी हो कर्मों के, फल का करो नहीं निर्धार;
कर सुकर्म नित कर्मों के फल का तज दे सब सोच विचार।

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्य सिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥४८॥

(४८)

करो कर्म योगस्थित हो कर पार्थ! छोड़ कर के सब सङ्ग,
मानों तुल्य असिद्धि-सिद्धि को, योग कहाता समता-रङ्ग।

योग-क्षेम=अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति को योग कहते हैं और प्राप्त की रक्षा को क्षेम कहते हैं। उन दोनों की तुम इच्छा न करो यह तात्पर्य है।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥४६॥

(४६)

बुद्धियोग से भिन्न कर्म जो, वे हैं नीच, पाण्डु-कुल-केतु !
करौ प्रवर्त्तन इस से मति में, हैं सब दीन फलों के हेतु ।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥५०॥

(५०)

बुद्धि युक्त मानव तज देता, अर्जुन ! पाप पुण्य संयोग;
इस से लग्न योग में हो अब, कर्म-कुशलता ही है "योग"

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।
जन्मबंधं विनिर्मुक्ताः पदं गच्छंत्यनामयम् ॥५१॥

(५१)

बुद्धि-युक्त मानव कर्मों के, फल का कर देते हैं त्याग;
जन्म-बन्ध से विरहित होकर, वे ही पाते मोक्ष-विभाग ।

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गंतासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥५२॥

(५२)

मोह सघनता को तेरी मति, पार्थ ! करैगी जब ही त्याग;
तब ही श्रुत में श्रोतव्यों में, उपजैगा तुम को वैराग ।

मति में=बुद्धि योग में । श्रुत में=सुने हुए में । श्रोतव्यों=जो सुनोगे ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥५३॥

(५३)

भ्रमित बुद्धि राजन्य ! तुम्हारी, जब कर लेगी स्थिरता प्राप्त;
होगी लग्न समाधि-कृत्य में, तब ही योग मिलैगा आप्त ।

अर्जुन:—

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥५४॥

(५४)

समाधिस्थ निश्चल-मति जन के, लक्षण बतलाओ भगवान् !
क्या भाषा वह कैसे बोले, कैसे बैठे चले सुजान ?

श्रीभगवान:—

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥५५॥

(५५)

जब सब कामों को तज देता, आत्मा से ही होता तुष्ट;
आत्मा में रमता तब ही वह, होता निश्चल-मति नृप जुष्ट ।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभय क्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥५६॥

आप्त=हितकारी । नृप जुष्ट=राजाओं से सेवित ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(५६)

शोक समय में अनुद्विग्नता, सुख की अभिलाषा से हीन;
प्रेम, क्रोध, भय नहीं जिन्हें, वे, स्थित-मति कहलाते मति-पीन।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्यप्रज्ञाप्र तष्ठिता ॥५७॥

(५७)

सब में प्रेम-रहित हो अर्जुन !, शुभ से चित्त न हो संहृष्ट;
अशुभ नहीं जिस को दुख देता, स्थित मति वह है वीरोत्कृष्ट।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५८॥

(५८)

जैसे निज प्रसरित अंगों को, कच्छप कर लेता आकृष्ट;
त्यों विषयों से इन्द्रिय-गण को, खींचे उसकी बुद्धि प्रकृष्ट ।

विषया विनिवर्त्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्त्तते ॥५९॥

(५९)

विषय निराहारी मनुजों के, चाह विना होते विनिवृत्त;
वह भी आत्म रूप दर्शन से, अर्जुन ! हो जाती है कृत्त ।

यततो ह्यपि कौंतेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इंद्रियाणि प्रमाथीनि हरंति प्रसभं मनः ॥६०॥

मति-पीन=अर्जुन । अनुद्विग्नता=खेद न होना ।
संहृष्ट=आनन्दित । कृत्त=छिन्न ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(६०)

अति विचार-शाली मानव के, करने पर भी यत्न महान;
मन का आकर्षण कर लेता, इन्द्रियगण अतिशय बलवान्।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशेहि यस्येंद्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६१॥

(६१)

इन्द्रिय-गण का सुदमन कर के अर्जुन! हम में हो वह युक्त;
जिसके वश में हैं इन्द्रिय गण, उनकी ही है स्थिर-मति उक्त।

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्ते षूपजायते ।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥६२॥

(६२)

विषयों का चिंतन करने से, उन में होता है आसङ्ग;
उससे काम क्रोध संमोहन, विस्मृति क्रमशः लाते रङ्ग।

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥६३॥

(६३)

भङ्ग हुए स्मृति के होता, पाण्डव वीर! बुद्धि का नाश;
बुद्धि-नाश होने से होता, सर्व फलों का त्वरित प्रणाश।

आसङ्ग=आसक्ति। संमोहन=अविवेक, अविचार या अज्ञान।
त्वरित=शीघ्र।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिंद्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥६४॥

(६४)

राग द्वेष से विरहित हो कर, मन को कर के अपने वश्य;
भोग करै इन्द्रिय-विषयों का, वह पाता है शान्ति अवश्य।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥६५॥

(६५)

शांति लाभ होने से अर्जुन, ! सब हो जाता दुःख विनष्ट;
उस से मन प्रसन्न होने से, होती है स्थिर-मति उत्कृष्ट।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः शांतिरशांतस्य कुतः सुखम् ॥६६॥

(६६)

पुरुष अयुक्त जगत में रहते, बुद्धि-भावनाओं से हीन;
शांति नहीं भावना हीन को, बिना शांति सुख कहाँ प्रवीन!

इंद्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवांभसि ॥६७॥

(६७)

विषय-प्रवृत्त इन्द्रियों में से, चित्त झूमता जिसकी ओर;
वही बुद्धि उसकी हर लेता, ज्यों तरणी को पवन झकोर।

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६८॥

पुरुष अयुक्त=जो पुरुष पूर्वोक्त समत्व बुद्धि द्वारा कर्म में युक्त नहीं। जिस का मन एकाग्र नहीं है। तरणी=नौका।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(६८)

इससे जिसकी सब इन्द्रिय-गण, विषय गणों से रहतीं दूर;
उस मानव-पुंगव की प्रज्ञा, है प्रतिष्ठता पाण्डव-शूर!।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥६९॥

(६९)

सर्व प्राणियों की जो रजनी, उस में जागें योगी-वृंद;
जिस में सब प्राणी जगते हैं, उस में वे सोते सानन्द।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशंति यद्वत्।
तद्वत्कामायं प्रविशंति सर्वे स शांतिमाप्नोति न कामकामी ॥७०॥

(७०)

जैसे पूर्ण-सिंधु में जाकर, होते नीर-प्रवाह प्रविष्ट;
तैसे काम लीन हो जिस में, पाता वही शांति उत्कृष्ट।

विहाय कामान्यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शांतिमधिगच्छति ॥७१॥

(७१)

जो नर इच्छाओं को तज कर, हो जाता कामना-विहीन;
और गर्व, ममता तज देता, होता वह सु-शांति में लीन।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामंतकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥७२॥

(७२)

ब्रह्म-ज्ञान कहा यह, इससे-होती नष्ट मोह की युक्ति;
अन्त समय में भी स्थित हो यदि, इसमें तो पावै वह मुक्ति।

प्रज्ञा=बुद्धि। रजनी=रात। प्रविष्ट=प्रवेश। उत्कृष्ट=श्रेष्ट।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

तीसरा अध्याय

अर्जुन:—

ज्यायसी चेत् कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥१॥

ज्ञान-योग से कर्म-योग को, उत्तम जो बतलाते आप;
तो क्यों घोर कर्म में मुझ को, योजित कर कर वाते पाप ।

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥२॥

(२)

कह कर मिश्रित वचनों को क्यों, करते भ्रमित हमारी बुद्धि;
करो एक उपदेश सु-निश्चित, जिस से होवे श्रेय-प्रवृद्धि ।

श्रीभगवान:—

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥३॥

(३)

निष्ठा दो प्रकार की जग में, पहिले कहीं विगत-अघ-मर्म;
सांख्यविदों को ज्ञान-योग है, योगी-वृंदों को है कर्म ।

योजित=लगा कर । श्रेय-प्रवृद्धि=कल्याण । निष्ठा=स्थिति

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

नकर्मणामनारंभान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥४॥

(४)

बिना किये कर्मों को अर्जुन!, होता नहीं नरों को ज्ञान;
केवल सन्यासी होने से, मोक्ष नहीं मिलती मतिमान।

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥५॥

(५)

बिना किये कर्मों को कोई, कभी नहीं रह सकता पार्थ!
करते विवश कर्म करने को, सब को प्रकृति-जनित गुण सार्थ।

कर्मेंद्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इंद्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥६॥

(६)

कर्म-इन्द्रियों का सु-दमन कर, करता मन में विषय-विचार;
पाखण्डी उसको कहते हैं, करनेवाला मिथ्याचार।

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः सविशिष्यते ॥७॥

(७)

अनासक्त हो करे कर्म में, कर्मेन्द्रिय-गण को अनुकृष्ट;
इन्द्रिय-दमन चित्त से कर दे, वह मानव है पार्थ! विशिष्ट।

प्रकृति-जनित=प्रकृति से उत्पन्न हुए। गुण सार्थ=समूह।
अनुकृष्ट=युक्त। विशिष्ट=श्रेष्ठ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिध्येदकर्मणः ॥८॥

(८)

नियमित कर्म करौ तुम अर्जुन ! अकर्मण्य से करना श्रेष्ठ;
शरीर का निर्बाह कठिन है, बिना कर्म के धर्म-ज्येष्ठ ।

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबंधनः ।
तदर्थं कर्म कौंतेय मुक्तसंगः समाचर ॥९॥

(९)

ईश निमित्तिक कर्म-गणों से अन्य कर्म हैं बन्धन-रूप;
इस से फल-इच्छा को तजकर, करो कर्म हे भारत-भूप ! ।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥१०॥

(१०)

यज्ञ समेत प्रजा को रचकर, उन से बोले बिधि मति-धाम;
सब इस यज्ञ-कर्म के द्वारा, पूर्ण तुम्हारा होगा काम ।

देवान्भावयताऽनेन ते देवा भावयंतु वः ।
परस्परं भावयंतः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥११॥

(११)

तुष्ट करौ देवों को मख से, देव करें तुम को संतुष्ट,
करौ परस्पर कर्म इसी से, तुम होगे मंगल से जुष्ट ।

धर्म-ज्येष्ट=धर्मराज युधिष्ठर हैं ज्येष्ठ जिन के ।
मख=यज्ञ । जुष्ट=युक्त ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यंते यज्ञभाविता: ।
तैर्दत्ता न प्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव स: ॥१२॥

(१२)

यज्ञ-कर्म से तोषित सुर-गण, देंगे सब ही इच्छित भोग्य;
विना दिये जो उनको भोगै, है वह चोर कहाने योग्य ।

यज्ञशिष्टाशिन: संतो मुच्यंते सर्वकिल्विषै:
भुंजते ते त्वघं पापा ये पचंत्यात्मकारणात् ॥१३॥

(१३)

यज्ञ-शेष के खाने वाले, सब पापों से होते मुक्त;
जो अपने ही लिये पकाते, होते वे अघ से संयुक्त ।

अन्नाद्भवंति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभव: ।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञ: कर्मसमुद्भव: ॥१४॥

(१४)

प्राणी-वृन्द अन्न से होते, वर्षा से होता है अन्न;
होती वृष्टि यज्ञ से, होता, यज्ञ सुकर्मों से सम्पन्न ।

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥१५॥

(१५)

कर्म वेद से जायमान हैं, वेद ब्रह्म से हैं उद्भूत;
इससे 'सर्वग ब्रह्म यज्ञ में, स्थित है' जानों पाण्डु-सपूत ।

उद्भूत=उत्पन्न । सर्वग=सब में व्याप्त । पाण्डु-सपूत=अर्जुन ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।
अघायुरिंद्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥१६॥

(१६)

चक्र प्रवर्त्तित है यह, जो नर, चलें नहीं इसके अनुसार;
वे विषयी पापाचारी हैं, जीवन उन का है निःसार ।

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥१७॥

(१७)

आत्म रूप में जो रमता है, आत्मा से ही होता तृप्त;
तुष्ट आत्मा ही में, उसको, कोई कार्य नहीं है क्लप्त ।

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥१८॥

(१८)

कर्म न करने या करने से, उसको नहीं हानि या लाभ;
सब जीवों से नहीं प्रयोजन, कोई है उसको देवाभ ! ।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥१९॥

(१९)

फल की अभिलाषा को तज कर, अर्जुन करो निरन्तर कर्म;
इच्छा रहित कर्म करने से, होता प्राप्त मोक्ष का मर्म ।

क्लप्त=करने योग्य कथित नहीं है ।
देवाभ=देवताओं के समान रूप वाले अर्थात् अर्जुन ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ॥२०॥

(२०)

जनकादिक नृप भी कर्मों से, ज्ञानी होकर हुये विमुक्त;
लोकाचारों के अनुगामी, बनने में अब हो संयुक्त ।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
सयत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥२१॥

(२१)

जिन जिन आचरणों में अर्जुन ! देते श्रेष्ट पुरुष हैं योग;
जैसा वे करते हैं वैसा, करते सर्व विश्व के लोग ।

न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥२२॥

(२२)

हम को कुछ कर्तव्य नहीं है, त्रिभुवन में हे चिंतामग्न;
सभी वस्तुएँ प्राप्त मुझे हैं, तौ भी रहूँ कर्म में लग्न ।

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतंद्रितः ।
मम वर्त्मानुवर्तंते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥२३॥

(२३)

जो मैं इतनी तत्परता से, नहीं रहूँ यदि कर्म-प्रवृत्त;
तौ सब पुरुष लगेंगे देने, मेरे अनुवर्त्तन में चित्त ।

अनुवर्तन=मेरे मार्ग का अनुसरण करने में ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥२४॥

(२४)

करना कर्म त्याग दूँ यदि मैं, सब लोकों का हो अवसान;
प्रजा-नाश संकर-वर्णों के, होने का मैं बनूँ निदान ।

सक्ताः कर्मण्य विद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत ।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥२५॥

(२५)

जैसे अज्ञानी करते हैं, कर्मों को होकर तल्लीन;
तैसे जन-प्रवृत्ति के कारण, करते कर्म असक्त प्रवीन ।

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम् ।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥२६॥

(२६)

कर्मासक्त—अज्ञ—लोगों से, कर्म करावें योगी—आर्य;
करें न उनके बुद्धि-भेद को, करते हुये स्वयम् भी कार्य ।

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥२७॥

(२७)

अर्जुन ! सर्व कार्य-निकरों के, कर्त्ता हैं प्राकृत गुण-वृन्द;
अपने में कर्तृत्व मानते, अहंकार—युत मानव-मन्द ।

अवसान=नाश । निदान=कारण । असक्त=आसक्त न हो कर । प्रवीण=चतुर, विद्वान् । प्राकृत गुण=प्रकृति के गुण ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः
गुणा गुणेषु वर्त्तंत इति मत्वा न सज्जते ॥२८॥

(२८)

गुण–कर्मों के तत्व ज्ञाता, नहीं कभी हों कर्मासक्त;
यह विचार करके होते हैं, इन्द्रिय–विषयों में अनुरक्त।

प्रकृतेर्गुणसंमूढा सज्जंते गुणकर्मसु
तानकृत्स्नविदो मंदान्कृत्स्नविन्नविचालयेत ॥२९॥

(२९)

मोहित हो कर प्रकृति गुणों से, नर करते इन्द्रिय-व्यापार;
पण्डित, उन अनभिज्ञ नरों को, विचलित करें न किसी प्रकार।

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥३०॥

(३०)

मुझ को अर्पण कर कर्मों को, ममता और कामना छोड़;
युद्ध करो हे युद्ध विशारद ! शोकों के बन्धन को तोड़।

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठंति मानवाः।
श्रद्धावंतोऽनसूयंतो मुच्यंते तेऽपि कर्मभिः ॥३१॥

(३१)

जो मेरे इस मत को करते, हो कर श्रद्धा से संयुक्त;
ईर्षा तज कर, वे होते हैं, कर्मों के बन्धन से मुक्त।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

ये त्वेतदभ्यसूयंतो नानुतिष्ठंति मे मतम् ।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥३२॥

(३२)

दूषित कर जो मेरे मत को, नहीं मानते, वे हैं अज्ञ;
मृतक-तुल्य उन को तुम जानों, हैं विनष्ट ही वे, हे विज्ञ !।

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यांति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥३३॥

(३३)

ज्ञानवान् नर भी स्व-प्रकृति के, सम-चेष्टा करता है वीर !,
सब प्राणी रहते स्व-प्रकृति से, शिक्षा क्या कर सकती धीर !।

इंद्रियस्येंद्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौह्यस्य परिपन्थिनौ ॥३४॥

(३४)

इन्द्रिय-गण को निज विषयों में, होते राग-द्वेष अवश्य;
किन्तु मोक्ष-पथ में वे अरि हैं, कभी नहीं हो उनके वश्य ।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥३५॥

(३५)

अन्य धर्म समधिक हो तौभी, श्रेयष्कर है अपना धर्म;
मरना भला स्वकीय धर्म में, अपर-धर्म करता भय-कर्म ।

स्वकीय=अपने । अपर=दूसरा ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

अर्जुनः—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥३६॥

(३६)

इच्छा-हीन पुरुष भी किस की, करै प्रेरणा से सब पाप,
बल से योजित मानव के सम, हृषीकेश! बतलाओ आप।

श्रीभगवानः—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥३७॥

(३७)

रज से सब भक्षी अति पापी, काम क्रोध होते उत्पन्न;
प्रबल शत्रु इन को तुम जानों, मुमुक्षुओं के मति-सम्पन्न।

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥३८॥

(३८)

जैसे अग्नि धूम से ढँपती, ज्यों मल से दर्पण रुचिमान;
जैसे गर्भ त्वचा से ढँपता, तैसे ढँपै काम से ज्ञान।

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण कौंतेय दुष्पूरेणानलेन च ॥३९॥

(३९)

अनल समान विहीन तृप्ति से, जो है बैरी काम-स्वरूप;
उसने ज्ञानी के ज्ञानों को, ढँक रक्खा है पाण्डव-भूप।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

इंद्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठान मुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥४०॥

(४०)

इन्द्रिय, चित्त, बुद्धि ये तीनों, मुख्य काम के वास-स्थान;
इन हीं से मोहित करता है, जीवों को ढँक कर के ज्ञान।

तस्मात्त्वमिंद्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥४१॥

(४१)

इससे इन्द्रिय-गण को पहिले, करके वश में पार्थ अवश्य;
ज्ञान विनाशक दुष्ट काम को जीतो क्षत्रिय-वंश-प्रशस्य।

इंद्रियाणि पराण्याहुरिंद्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेपरतस्तु सः ॥४२॥

(४२)

इन्द्रिय-गण हैं परे सभी से, परे इन्द्रियों से है चित्त;
उससे परे बुद्धि है उससे, परे आत्मा है मति-वित्त !।

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥४३॥

(४३)

यों आत्मा को परे जान कर, मति से कर के निश्चल स्वान्त;
काम रूप उत्कट वैरी का, दमन करौ पाचांली-कान्त !

प्रशस्य=प्रशंसा योग्य। मति-वित्त=बुद्धिरूप धनवाले अर्थात् अर्जुन।
स्वान्त=मन। पांचाली-कान्त=अर्जुन।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

चौथा अध्याय

श्रीभगवान:—

इमं विबस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत ॥१॥

अर्जुन! हमने प्रथम कहा था, रवि के प्रति यह अव्यय-ज्ञान;
रवि ने मनु से कहा, उन्होंने, इक्ष्वाकु से कहा सुजान।

एवं परंपराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ॥२॥

(२)

ज्ञात हुआ राजर्षि गणों को, यों क्रम से यह योग नरेश!;
बहुत काल के गत होने से, नष्ट हुआ इसका उपदेश।

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेतिरहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥३॥

(३)

सखा सुभक्त जान बतलाया, तुमको वही योग प्राचीन;
उत्तम यह रहस्य है अर्जुन, इस में रहौ सतत तल्लीन।

अव्यय=विकार रहित।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

अर्जुनः—

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥४॥

(४)

भगवन् ! आप अभी जन्मे हैं, प्रकट हुए पहिले ही भानु;
प्रभु ने उनसे कहा किस तरह, कहिए दानव-विपिन-कृशानु।

श्रीभगवानः—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहंवेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥५॥

(५)

अहो परंतप ! इस पृथिवी पर, हम तुम जन्में हैं कई बार;
तुम यह गूढ़ भेद क्या जानों, मुझे विदित है भली प्रकार।

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥६॥

(६)

यद्यपि मैं हूँ अज अविनाशी, और प्राणियों का आधार;
फिर भी स्व-प्रकृति का आश्रित हो, लूँ निज माया से अवतार।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥७॥

(७)

जब जब ग्लानि धर्म की होती, और अधर्मों का उत्थान;
तब तब मैं अपनी आत्मा को, सृजता हूँ भारत-संतान ! ।

दानव-विपिन-कृशानु=श्री कृष्ण भगवान् ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥८॥

(८)

साधु-वृन्द-रक्षा करने को, कर अधर्मियों का संहार–
–धर्म स्थापन के निमित्त मैं, लेता हूँ प्रतियुग अवतार।

जन्मकर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥९॥

(९)

मेरे दिव्य जन्म-कर्मों का, इस प्रकार जो जानें तत्व,
तज शरीर वह नहीं जन्मता, मिलता उसका मुझ में सत्व।

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥१०॥

(१०)

राग क्रोध भय को तज कर जो, मेरे ही आश्रित हैं भूप!;
ज्ञान और तप से पवित्र हैं, वे सब हैं, मेरे ही रूप।

ये याथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम्
मम वर्त्मानुवर्त्तंते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥११॥

(११)

जो मुझ को जैसे भजता है, उसको वैसा दूँ परिणाम;
मेरे पथ पर ही चलते हैं, सर्व विश्व के नर मतिधाम!

सत्व=प्राण। पथ=मार्ग।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

कांक्षंतः कर्मणां सिद्धिं यजंत इह देवताः ।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥१२॥

(१२)

करते हैं देवों की पूजा, कर के जो अभिलाषा स्वार्थ;
उन को मनुज लोक में मिलती, शीघ्र सिद्धि कर्मों से पार्थ !

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्त्तारमव्ययम् ॥१३॥

(१३)

गुण-कर्मों के ही विभाग से, चारों वर्ण रचे बल-पूर;
अविनाशी कर्त्ता हूँ उसका, और अकर्त्ता भी हूँ शूर !

न मां कर्माणि लिम्पंति न मे कर्मफले स्पृहा
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥१४॥

(१४)

लीन नहीं होता कर्मों में, नहीं मुझे है फल की चाह;
ऐसे मुझे जानता, उसको, नहीं बहाता कर्म-प्रवाह ।

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥१५॥

(१५)

पूर्व काल के मुमुक्षुओं ने, ऐसा जान, किए थे कर्म;
इससे पार्थ ! उन्हीं कर्मों को, तुम भी करो जान कर मर्म ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥१६॥

(१६)

कर्म-अकर्मों के विचार में, मोहित होते हैं धीमान;
वही कर्म तुम से कहता हूँ, अशुभ-विनाशी जिसका ज्ञान।

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥१७॥

(१७)

कर्म, विकर्म, अकर्म आदि का, है आवश्यक तत्वज्ञान;
गति अति गहना है कर्मों की, उसे जान लो पार्थ ! सुज्ञान।

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत ॥१८॥

(१८)

आत्म ज्ञान कर्म में देखें, उसका साधन मानें कर्म;
वह मनुजों में बुद्धिवान है, उसको मिला योग का मर्म।

यस्य सर्वे समारंभाः कामसंकल्पवर्जिताः
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पंडितं बुधाः ॥१९॥

(१९)

इच्छा-संकल्पों से विरहित, जिन के होते हैं सब कार्य;
ज्ञान-अग्नि से कर्म दग्ध है, उसको कहते पण्डित आर्य।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित् करोति सः ॥२०॥

(२०)

रहै निराश्रय और तृप्ति-युत, तजै कर्म की फल-अभिलाष,
फिर कर्मों में रत हो तौ भी, पड़ती नहीं कर्म की पाश ;

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥२१॥

(२१)

सब परिग्रह आशा के त्यागी, करके निज आत्मा मन वश्य;
देह मात्र से कर्म करें जो, पाप-मुक्त वे रहें अवश्य ।

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वंद्वातीतो विमत्सरः ।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते ॥२२॥

(२२)

स्वतः प्राप्ति से तुष्ट, विमत्सर, सुख दुःखों से हैं जो हीन;
तुल्य असिद्धि, सिद्धि में हैं वे, कर्म-बन्ध से रहें अलीन ।

गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥२३॥

(२३)

राग-द्वेष रहित निष्कामी, जिन का चित्त ज्ञान में युक्त;
यज्ञ-आचरण करने वाले, नर होते कर्मों से मुक्त ।

पाश=बन्धन । परिग्रह=धन, भूमि, स्त्री इत्यादि बन्धन कारक वस्तुएँ ।
विमत्सर=ईर्षा रहित । अलीन=मुक्त, दूर ।
यज्ञ......वाले=यज्ञों की सिद्धि और रक्षा के लिए कर्म करने वाले ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणाहुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गंतव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥२४॥

(२४)

अर्पण-हवि-पावक-आहुति, इन, सबको जाने ब्रह्म-स्वरूप;
ब्रह्म-कर्म में रत हो कर के, उसे प्राप्य है ब्रह्म सु-भूप ! ।

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥२५॥

(२५)

कोई योगी मुख्य मान कर, विधि वत् पूजें देवस्तोम;
कोई ब्रह्म रूप पावक में, यज्ञ-ब्रह्म का करते होम ।

श्रोत्रादीनींद्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ।
शब्दादीन्विषयानन्यइंद्रियाग्निषु जुह्वति ॥२६॥

(२६)

कोई ज्ञानेन्द्रिय-वृन्दों को, संयमाग्नि में करते लीन;
कोई विषयों का लय करते, इन्द्रिय पावक में मति-पीन ।

सर्वाणींद्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥२७॥

(२७)

आत्म-दमन रूपी पावक को, दीप्त ज्ञान से करके आर्य्य;
इन्द्रिय प्राणों के कर्मों का, कोई करते आहुति-कार्य ।

अर्पण=स्रुवादि करण जिनसे आहुति दी जाती है ।
हवि=यज्ञाग्नि में डाले जाने वाले द्रव्य जैसे, घृत, तिल, शक्कर जवा इत्यादि । स्तोम=समूह । दीप्त=ज्वलित ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

द्रव्ययज्ञास्तपो यज्ञा योगयज्ञास्तथापरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥२८॥

(२८)

कोइ द्रव्य से कोई तप से, करैं योग से कोई यज्ञ;
वेद-पाठ-ज्ञानों से कोई, यती साधते दृढ़-व्रत विज्ञ।

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥२९॥

(२९)

प्राण होमते हैं अपान में, कोइ प्राण के मध्य अपान;
प्राण अपान रोक के कोई, करते प्राणायाम महान।

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥३०॥

(३०)

कोई योगी थोड़ा खाकर, होमें प्राणों ही में प्राण;
यज्ञों के वेत्ता ये करते, पाप—नाश, पाते कल्याण।

यज्ञशिष्टामृतभुजो यांति ब्रह्मसनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥३१॥

(३१)

यज्ञ-शेष के खाने वाले, ब्रह्म-सनातन करते प्राप्त;
है परलोक कहाँ अयज्ञ को, यह भी लोक न होता आप्त।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥३२॥

(३२)

इस प्रकार के यज्ञ बहुत हैं, नाना विधि वेदों में उक्त;
वे हैं कर्मों से उत्पादित, उन्हें जान हो जाओ मुक्त।

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप।
सर्वं कर्माऽखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥३३॥

(३३)

द्रव्य-यज्ञ से ज्ञान-यज्ञ ही, अति उत्तम है पार्थ प्रवीन!
सर्व कर्म-फल-सहित ज्ञान में, अन्त समय होते हैं लीन।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥३४॥

(३४)

करके सेवन नमन नम्र हो, करो प्रश्न गुरुओं से पार्थ;
तो वे ज्ञानी तत्व विचारी, तुम्हें बतावेंगे तत्वार्थ।

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पांडव।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥३५॥

(३५)

जिसे जानने से हे अर्जुन! होता महामोह विच्छिन्न;
और नहीं देखोगे सब को, हम से और आत्म से भिन्न।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥३६॥

(३६)

सर्व पापियों से यदि तुमने, अधिक किया हो पापाचार;
तौभी ज्ञान-नाव के द्वारा, पापसिन्धु कर लोगे पार।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥३७॥

(३७)

ज्वलित अग्नि ईंधन समूह को, जैसे भस्म करै तत्काल;
दग्ध सर्व कर्मों को करती, तैसे ज्ञान—वह्नि की ज्वाल।

न हि ज्ञानेनसदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विंदति ॥३८॥

(३८)

पार्थ ! पवित्र वस्तु है कोई, नहीं विश्व में ज्ञान समान;
योगी बहुत काल में पाता, स्वयम् आतमा में वह ज्ञान।

श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शांतिमचिरेणाधिगच्छति ३९

(३९)

ज्ञान प्राप्त करते हैं नैष्ठिक, इन्द्रियजित् नर श्रद्धावन्त;
ज्ञान-लाभ से ही पाते हैं, परम शान्ति को पार्थ ! तुरन्त।

विच्छिन्न=नष्ट। वह्नि=अग्नि।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥४०॥

(४०)

श्रद्धा हीन संशयी मानव, होते हैं विनाश को प्राप्त;
सन्देही लोगों के अर्जुन, होते दोनों लोक समाप्त।

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम्।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ॥४१॥

(४१)

किए कर्म प्रभु अर्पण, जिसके, हुए ज्ञान से संशय नष्ट;
फँसते नहीं कर्म-बन्धन में, ऐसे योगी ज्ञान-प्रकृष्ट।

तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः।
छित्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥४२॥

(४२)

उठो ! युद्ध हित, छेदन करके, ज्ञान खड्ग से संशय सर्व;
बड़े भाग्य से मिलै धनंजय !, समर-क्षेत्र जैसा शुभ पर्व।

नैष्ठिक=तत्पर, जो कुछ ज्ञान श्रद्धा पूर्वक सुने या उपार्जन करे उसको वर्ताव में लाने में पूर्ण प्रवृत्त हो।



CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

पाँचवाँ अध्याय

अर्जुन:—

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥१॥

कर्मों का सन्यास कभी फिर, कर्मयोग को कहते श्रेष्ट,
दोनों में जो हो श्रेयष्कर, निश्चय कर कहिए मति ज्येष्ट !

श्रीभगवान:—

संन्यास: कर्मयोगश्च नि:श्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्म संन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥२॥

(२)

कर्मयोग और कर्मत्याग हैं, दोनों श्रेयष्कर मतिमान;
तो भी कर्मत्याग से बढ़ कर, कर्मयोग है श्रेष्ट महान ।

श्रेयष्कर=कल्याण प्रद । मतिज्येष्ट=श्रीकृष्ण ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति ।
निर्द्वंद्वोहि महाबहो सुखं बंधात्प्रमुच्यते ॥३॥

(३)

राग-द्वेष, सुख दुख आशा का, कर देते हैं जो नर त्याग;
वे ही सन्यासी पाते हैं, भव-बन्धन से मुक्ति विराग ।

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदंति न पंडिताः ।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विंदते फलम् ॥४॥

(४)

पण्डित नहीं, मूर्ख नर ही जो, सांख्य योग में मानें भेद;
भली प्रकार एक ही साधे, पाते फल, कर भव-विच्छेद ।

यत्सांख्यैः प्राप्यतेस्थानं तद्योगैरपिगम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥५॥

(५)

ज्ञान और निष्काम कर्म से, परम धाम मिलता है अन्त;
अन्तिम फल-विचार ही देखें, जग में जो हैं सच्चे सन्त ।

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाधिगच्छति ॥६॥

(६)

अर्जुन ! बिना कर्म के कोई, पाता नहीं पूर्ण सन्यास;
कर्मयोग से ब्रह्म ज्ञान का, हो जाता है शीघ्र विकास ।

भव-विच्छेद=संसार पार करके ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेंद्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥७॥

(७)

रहता है अलिप्त ही यद्यपि, करता कर्म स्वमति अनुरूप;
इन्द्रियजित विशुद्ध भावों से, मानें सब में ब्रह्म-स्वरूप।

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।
पश्यन्शृण्वन् स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपन्श्वसन् ॥८॥

(८)

तत्व-ज्ञान के जानन हारे, चलते, फिरते, सूँघत, खात;
सुनते, छूते, और देखते, इन्द्रिय लिप्त न होवें तात!

प्रलपन्विसृजनगृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इंद्रियाणींद्रियार्थेषु वर्त्तंत इति धारयन् ॥९॥

(९)

श्वांस लेत, छोड़त, बोलत भी, सोते नेत्र मींचते पार्थ!
नेत्र खोलते भी वे जानें, है यह सब बस आत्म हितार्थ।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवांभसा ॥१०॥

(१०)

कर्मफलासक्ती को तज कर, जान ब्रह्म के कर्म-प्रवीन;
जल के कमल पत्र सम वे नर, होते नहीं पाप में लीन।

स्वमति=अपनी बुद्धि के अनुसार।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

कायेनमनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वंति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥११॥

(११)

इन्द्रिय, मन, शरीर, बुद्धि से, देते छोड़ ममत्व तथैव;
कर्म-सङ्ग तज करें कार्य्य वे, आत्म शुद्धि के लिए सदैव।

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शांतिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निवध्यते ॥१२॥

(१२)

कर्म फलों को प्रभु अर्पण कर, प्रभु-पद पाते, पाकर शांति;
और सकामी नर को ग्रसती, कर्म कामनाओं की भ्रांति।

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी।
नव द्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥१३॥

(१३)

सव कर्मों को मन से तजकर, यही मानते वे मतिधाम;
नव-द्वारों के देह-ग्राम में, होते स्वतः सभी हैं काम।

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥१४॥

(१४)

ईश्वर नहीं कर्म को करता, कर्म नहीं करता करतार;
प्रकृति स्वयम् कर्मों को करती, उस ही का है सब विस्तार।

स्वतः=अपने आप।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जंतवः ॥१५॥

(१५)

नहीं किसी के पाप पुण्य को, विभु लेते हैं कुंती पुत्र ! ;
है अज्ञान आवरण इस से, धोखा खाते नर सर्वत्र ।

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥१६॥

(१६)

आत्म ज्ञान से जिन के उर का, पार्थ ! हुआ अज्ञान विनष्ट;
पुरुष-श्रेष्ट वे ही पाते हैं, प्रभु-तेजोमय-रूप प्रकृष्ट ।

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छंत्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥१७॥

(१७)

बुद्धि और मन से प्रभुवर में, रहते जो संलग्न सयुक्ति;
जन्म-मरण तज कर वे ही नर, पाते हैं अवश्य ही मुक्ति ।

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः ॥१८॥

(१८)

विनयी विद्यावान विप्र या, गऊ, गज, श्वान, और चण्डाल;
सब को समता ही से देखें, वे ज्ञानी जन हे नरपाल !

प्रभु-तेजोमय-रूप-प्रकृष्ट=प्रभु का तेज युक्त उत्तम रूप अर्थात् परम तत्व, निज स्वरूप ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥१६॥

(१६)

जिन का मन समत्व भाव में, होता इस प्रकार है लीन,
विश्व जीत कर भव बन्धन से, होते वे ही मुक्त प्रवीन ।

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ।
स्थिरबुद्धिर संमूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः ॥२०॥

(२०)

हर्षित प्रिय से दुखित अप्रिय से, नहीं कभी हो, राग विराग;
मिलै ब्रह्म में ब्रह्म वेत्ता, थिर बुधि से सब संशय त्याग ।

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विंदत्यात्मणि यत्सुखम् ।
स ब्रह्म योगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ॥२१॥

(२१)

भव-भोगों का त्यागी पाता, भगवत्-ध्यान-जनित-सुख-कन्द;
ब्रह्मलीन हो जाता फिर वह, अनुभव कर अक्षय-आनन्द ।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयो नय एव ते ।
आद्यंतवंतः कौंतेय न तेषु रमते बुधः ॥२२॥

(२२)

सांसारिक अनित्य विषयों को, दुःख पाप का जानो मूल
हैं अर्जुन ! धीमान विवेकी, लिप्त नहीं होते जो भूल ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक् शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥२३॥

(२३)

काम-क्रोध-जनित-वेगों को, आजीवन जो करता वश्य;
वही सुखी है, पुरुष श्रेष्ट है, योग युक्त है वही अवश्य ।

योऽन्तः सुखोऽन्तरारामस्तथांतर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥२४॥

(२४)

आत्म ज्ञान ही में जिस को सुख, ज्ञान और मिलता विश्राम;
सांख्य योग वाला वह पाता, शांत-ब्रह्म जो सुख का धाम ।

लभंते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधायतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥२५॥

(२५)

संशय रहित, परोपकार में, जिन के हुए पाप सब क्षीण;
शांत ब्रह्म वे ही पाते हैं, ब्रह्म वेत्ता-पुरुष-प्रवीण ।

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥२६॥

(२६)

काम क्रोध तज, मन वश कर के, प्रभु-साक्षात्कार में लीन-
–होकर ही, वे ज्ञानी पाते, शांत-ब्रह्म-गुण गरिमासीन ।

काम-क्रोध-जनित=काम क्रोध से उत्पन्न हुए ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवांतरे भ्रुवोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यंतरचारिणौ ॥२७॥

(२७)

सांसारिक विषयों को तजकर, दृष्टि चढ़ावैं भौंह मँझार;
प्राण-अपान-वायु-सम करके, करै नासिका में संचार ।

यतेंद्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः । ॥२८॥

(२८)

इन्द्रिय, बुद्धि और मन पर जय, पाकर, मोक्ष-परायण-ज्ञान;
क्रोध और भय रहित हुए से, मिलती मुक्ति सतत मतिमान !

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शांतिमृच्छति ॥२९॥

(२९)

यज्ञ–तपोबल–भोगी एवम्, सर्वेश्वर, प्रेमी–निस्स्वार्थ;
तत्व समझ अनुयायी मेरे, शांत–ब्रह्म पाते हैं पार्थ ! ।

प्राण-अपान-वायु-सम करके=कुम्भक प्राणायाम करके ।

———:o:———

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

छठा अध्याय

श्रीभगवानः—

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्नचाक्रियः ॥१॥

केवल क्रिया, अग्नि के त्यागी, योगी नहीं सुनो हे पार्थ !
फल आशा तज कर्म किए हो, योगी सन्यासी निस्स्वार्थ ।

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पांडव ।
नह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ॥२॥

(२)

कहते हो सन्यास जिसे तुम, कहलाता है वह ही योग;
संकल्पों का त्याग किए ही, मिलता है योगी को योग ।

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्मकारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥३॥

(३)

करें कर्म्म निष्काम भाव से, पाते वही योग अनुराग;
योगारूढ़ नरों को हितकर, होता संकल्पों का त्याग ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

यदा हि नेंद्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥४॥

(४)

कर्म्म और विषयों से मन को, जो नर कर देते हैं दूर;
सब संकल्पों को तज देते, योग वही पाते भरपूर ।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥५॥

(५)

जीवात्मा ही, मित्र शत्रु है, नहीं अधोगति को हो प्राप्त;
निज उद्धार करें वे जग से, हुआ ज्ञान जिन को यह व्याप्त ।

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्त्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥६॥

(६)

निज सुबुद्धि से जिसने मन को, जीत, किया बश में मतिमान्!
मित्र समान वही मन होता, नहीं वही हो शत्रु समान ।

जितात्मनः प्रशांतस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णासुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥७॥

(७)

शीत, उष्ण, सुख, दुख, आदर भी, और अनादर द्रौपदि-कन्त !
इन को जो समान ही देखें, वही शांति पाते हैं अन्त ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेंद्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः ॥८॥

(८)

हुए तृप्त विज्ञान ज्ञान से, इन्द्रियजित, विकार से हीन;
पाहन, मिट्टी, कंचन सम कर, देखें योगीराज प्रवीन।

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबंधुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥९॥

(९)

सुहृद, मित्र, बैरी, निष्पक्षी, द्वेषी, धर्मात्मा विद्वान;
पापी, मध्यस्थी को सम कर, जो देखें हैं श्रेष्ट महान।

योगी युंजीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥१०॥

(१०)

मन, शरीर, इन्द्रिय को बश कर, त्याग बासना संग्रह भोग;
आशा तज एकाकी हो कर, शुद्ध हृदय से साधै योग।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥११॥

(११)

नहीं अधिक ऊँचा नीचा हो, शुद्धि भूमि करके निर्धार;
कुश मृग छाला की आसन युत, उपरोपरि वस्त्रों को धार।

पाहन=पत्थर ।
मध्यस्थी=जो दो झगड़नेवाले व्यक्तियों का पक्ष न लें किन्तु उन दोनों का भला चाहे । एकाकी–एकान्त में निवास करने वाला ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेंद्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युंज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥१२॥

(१२)

मन इन्द्रिय को वश में करके, बैठे आसन पर गुण रास !
अंतःकरण शुद्ध करने को, करै योग का फिर अभ्यास ।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरम् ।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥१३॥

(१३)

काया, शिर, ग्रीवा को थिर कर, अन्य दिशाओं से तेज ध्यान;
रक्खे ग्रीवा-अग्र-भाग पर, दृष्टि अचल दृढ़ हो मतिमान !

प्रशांतात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारि व्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥१४॥

(१४)

भय तज शांत चित्त हो बैठे, वर व्रत ब्रह्मचर्य्य में लीन;
मन थिर करके हो जावे फिर, योग ज्ञान में वह आसीन ।

युंजन्नेव सदात्मानं योगी नियतमानसः ।
शांतिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥१५॥

(१५)

इस प्रकार आत्मा को प्रभु में, सतत लगाता जो नर श्रेष्ट;
वह स्वाधीन चित्त का योगी, परम शांति पाता मति जेष्ट !

काया=शरीर (धड़) । शिर=मस्तक । ग्रीवा=गर्दन
मति ज्येष्ट=अर्जुन ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकांतमनश्नतः ।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥१६॥

(१६)

अति भोजन करने वाले या, क्षुधावन्त भी हे मतिमान !
अधिक जागने सोने वाले, पाते नहीं योग का ज्ञान ।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नाऽवबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥१७॥

(१७)

कर्मों में रत रहैं, करैं नित, यथा योग्य आहार विहार;
सोवै जागै सदा नियम से, पाता वही योग का सार ।

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥१८॥

(१८)

योग-ज्ञान से जब हो जाता, चित्त आत्मा ही में युक्त;
रहित कामनाओं से वह नर, कहलाता है योग प्रयुक्त ।

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमास्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य युंजतो योगमात्मनः ॥१९॥

(१९)

दीपक-ज्योति रहै निश्चल ही, मंद पवन में जिसी प्रकार;
ध्यानावस्थित योगी का चित, रहता है थिर उसी प्रकार ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥२०॥

(२०)

योगाभ्यास किए जब होता, मन उपराम निरुद्ध विशिष्ट;
सूक्ष्म विशुद्ध बुद्धि से तब नर, प्रभु दर्शन कर हो संतुष्ट।

सुखमात्यंतिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतींद्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥२१॥

(२१)

परे इन्द्रियों से है, होता, शुद्ध सूक्ष्म बुद्धि से ज्ञात;
परमानन्द प्राप्त कर योगी, बिचलित नहीं कभी हो तात!,

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥२२

(२२)

जग के सब लाभों से बढ़ कर, मानते योगी-वृन्द;
परमानन्द प्राप्त योगी को, नहीं डिगा सकते दुख द्वंद।

तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥२३॥

(२३)

दुख संयोग वियोग रहित वे, कहलाते हैं योगी राज;
निश्चय निर्विकल्प मन से वे, तत्पर हो कर करते काज।

मन उपराम निरुद्ध विशिष्ट=निरुद्ध मन जब संसार से विरक्त होकर आत्मस्वरूप के दर्शनों के लिए तैयार होता है। परे=विलग। निर्विकल्प=स्थिर, विकल्प, परिवर्तन या प्रभेदों से रहित।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

संकल्पप्रभवा-कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषत: ।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥२४॥

(२४)

मन से तज संकल्प कामना, जो नर करें योग भरपूर;
जय कर सभी इन्द्रियों को वे, सुख दुख करें हृदय से दूर ।

शनै:शनैरुपरमेद् बुद्धया धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिंतयेत् ॥२५॥

(२५)

क्रम क्रम से अभ्यास बढ़ा कर, हों वे आत्मज्ञान में लीन;
अन्य सभी चिन्ताएँ तज कर, धरैं धैर्य्य, हो योगासीन ।

यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥२६॥

(२६)

वश में हुआ नहीं हो, फिर भी, जिनका यह चित चंचल चोर;
उन्हें चाहिए सब कार्य्यों से, खींच, लगावें प्रभुकी ओर ।

प्रशांतमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शांतरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥२७॥

(२७)

पाप-रजोगुण-हीन, चित्त में, शांति-धारणा जिन के व्याप्त;
ब्रह्मभूत-योगी अवश्य वे, उत्तम सुख करते हैं प्राप्त ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

युंजन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यंतं सुखमश्नुते ॥२८॥

(२८)

पाप रहित होने से योगी, पा जाता है ब्रह्मानन्द;
करता सुखद सहर्ष सर्वदा, वह अनुभव अनन्त आनन्द;

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥२९॥

(२९)

मुझ ही को सब में वह देखै, सब को मुझ ही में सविवेक;
सब में व्यापक मानै चेतन, उस अनन्त आत्मा को एक ।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥३०॥

(३०)

जो मुझको सर्वत्र देखता, मुझ में हो जिस को सब दृष्ट;
उस से नहीं अदृष्य रहूँ मैं, वह भी रहै न मुझ अदृष्ट ।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्त्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥३१॥

(३१)

आत्म रूप देखे जीवों को, भजै मुझे वह योग-प्रवीन;
करता हुआ जगत कार्य्यों को, रहता है वह मुझ में लीन।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥३२॥

(३२)

प्राणिमात्र को सम कर लेखै, मानै सुख दुख एक समान;
माना गया वही सर्वोत्तम, योगी हे पाण्डव संतान ।

अर्जुन:—

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।
एतस्याहं न पश्यामि चंचलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ॥३३॥

(३३)

समत्व भाव से ध्यान योग जो, कहा आपने हे यदुनाथ !
मन चंचलता वश वह देगा, नहीं विशेष काल तक साथ ।

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥३४॥

(३४)

यह मन चंचल इन्द्रिय क्षोभक, सुदृढ़ बली है पवन समान;
इस पर जय पाना है दुष्कर, मेरे मत में हे भगवान !

श्रीभगवान:—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते ॥३५॥

(३५)

सचमुच मन चंचल होता है, इसे जीतना दुष्कर कार्य्य;
अभ्यासों वैराग्यों ही से, रोका जाता है वह आर्य्य ।

क्षोभक=विक्षिप्त और परवश करने वाला ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥३६॥

(३६)

मन पर जय जो नहीं पा सका, उसे कठिन है पाना योग;
पर स्वाधीन मनस्वी उसको, पाते हैं कर के उद्योग।

अर्जुनः—

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ॥३७॥

(३७)

श्रद्धायुक्त यत्न करने से, यदि मन डुगा तो फिर हे श्याम!
योग-सिद्धि मग-विचलित होने से क्या गति मिलती घनश्याम!

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥३८॥

(३८)

छिन्न भिन्न होने से माधव! हो न जायँ दोनों ही नष्ट;
छिन्न मेघ गण के समान ही, योग भोग दोनों से भ्रष्ट?

एतन्मे संशयं कृष्ण च्छेत्तुमर्हस्यशेषतः।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता नह्युपपद्यते ॥३९॥

(३९)

माधव! मेरे इस संशय को, हरने योग्य आप हैं एक;
बढ़कर और आप से कोई, दे सकता है कौन विवेक?

डुगा=विचलित हुआ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

श्रीभगवानः—

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति ॥४०॥

(४०)

योगी का दोनों लोकों में, होता नहीं कभी है नास;
शुभ कर्मों के करने वाले, बनें नहीं दुर्गति के ग्रास।

प्राप्य पुण्यकृतांलोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥४१॥

(४१)

योग-भ्रष्ट-नर भी पाते हैं, पुण्य लोक का ही आवास;
फिर शुचि श्रीमानों के घर में, जन्में जग में हे मतिरास!

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥४२॥

(४२)

ज्ञानवान योगी के गृह वे, अथवा लेते हैं अवतार;
बड़ी कठिनता से पाता है, ऐसा जन्म कभी संसार।

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदैहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनंदन ॥४३॥

(४३)

पूर्व-जन्म-संस्कार विवश वह, पाता है समत्व संयोग;
हे कुरुनन्दन! कर प्रयत्न फिर, करता है वह विधिवत् योग।

ग्रास=कौर। पुण्य लोक=स्वर्ग लोक। आवास=निवास।
शुचि श्रीमानों=शुद्ध आचरण वाले श्रीमान।
मतिरास=अर्जुन। समत्व संयोग=समत्व बुद्धि योग का संयोग।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्त्तते ॥४४॥

(४४)

विषयों के वश में भी रहकर, भगवद्भक्ति करै स्वीकार;
वेदोल्लिखित सकाम कर्म-फल, को कर जाता है वह पार।

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥४५॥

(४५)

सद्गति को पाता है योगी, करता है जो मन्द प्रयत्न;
क्यों न परमगति वह फिर पावै, रहता है जब सतत सयत्न ?

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥४६॥

(४६)

तपसी, शास्त्रज्ञों, सकाम कर्मों के कर्त्ताओं से श्रेष्ठ;
—माना गया सदा है योगी, अतः योग कर हे मतिज्येष्ठ।

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनांतरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥४७॥

(४७)

जपता सदा अन्तरात्मा से, मुझ ही को जो श्रद्धावान;
उस योगी को अधिक श्रेष्ट मैं, सदा मानता हूँ मतिमान !

मति ज्येष्ठ=अर्जुन। मतिमान=अर्जुन।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

सातवाँ अध्याय

श्रीभगवान:—

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युंजन्मदाश्रयः ।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥१॥

बल, विभूति, ऐश्वर्य युक्त हूँ, आत्म रूप में सर्व प्रकार;
संशय तज अनन्य श्रद्धा से, सुनो सुनाऊँ वही विचार ।

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज् ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज् ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥२॥

(२)

रहस्य मय उस तत्वज्ञान को, कहता हूँ मैं अब सम्पूर्ण;
जिसे जान कर शेष न रहता, जग का कोई ज्ञान अपूर्ण ।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥३॥

(३)

पुरुष सहस्रों में हे अर्जुन !, यत्न करै कोई नर एक;
उन्हीं यत्न कर्त्ताओं में फिर, सिद्धि पा सकै कोई एक ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकारइतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥४॥

(४)

भूमि, अग्नि, जल, पवन, बुद्धि, मन, अहङ्कार और आकाश;
इन्हीं आठ तत्वों में मेरी, प्रकृति विभक्त हुई मतिरास !

अपरे यमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥५॥

(५)

अपरा प्रकृति जानिए मेरी, चेतन, परा प्रकृति है अन्य;
सकल विश्व होता है धारण, उस ही से, पाण्डव-कुल-धन्य।

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥६॥

(६)

इन दोनों ही से बनते हैं, सकल विश्व के सभी पदार्थ;
प्रलय और उत्पत्ति सभी का, मैं ही हूँ कारण हे पार्थ !

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥७॥

(७)

नहीं विलग कुछ कोई मुझ से, मुझ ही में हैं सभी अनेक;
ऐसे रहें पिरोए जैसे, धागे में मणि–माला एक।

मतिरास=अर्जुन। अपरा=जड़। परा=चेतन।
पाण्डव-कुल-धन्य=अर्जुन।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

रसोऽहमप्सु कौंतेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥८॥

(८)

जल में रस, रवि शशि में किरणें, वेदों में ओंकार स्वरूप;
नभ में शब्द और पुरुषों में, पौरुष है मेरा ही रूप ।

पुण्यो गंधः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥९॥

(९)

पृथिवी में पवित्र गंध हूँ, और अग्नि में तेज समान;
सर्व प्राणियों में आयुष सम, तपस्वियों में तप मतिमान !

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥१०॥

(१०)

बीज सनातन सब भूतों का, मैं ही हूँ पाण्डव-सन्तान !;
बुद्धि, बुद्धिमानों में मैं हूँ, तेजवन्त में तेज समान ।

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।
धर्माऽविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥११॥

(११)

बलवानों का वह बल हूँ मैं, जिससे काम-राग का त्याग;
पाते प्राणिमात्र मुझ ही से, धर्म-काम का भी अनुराग ।

मतिमान=अर्जुन । पाण्डव-सन्तान=अर्जुन ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥१२॥

(१२)

सात्विक, राजस, तामस भावों, को मैं ही करता उत्पन्न;
वे मुझ से हैं, पर मैं उनमें, होता नहीं कभी आसन्न ।

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥१३॥

(१३)

इन तीनों गुण मय भावों से, यह सब मोह-ग्रसित-संसार;
नहीं जान पाते हैं मेरी; निर्विकार-सत्ता का सार ।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥१४॥

(१४)

मेरी दिव्य गुणमयी माया, निसन्देह है कठिन महान;
किन्तु प्राप्त जो मुझ को करते, वे इसको तरते मतिमान !

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरंभावमाश्रिताः ॥१५॥

(१५)

माया से विनष्ट ज्ञान के, नीच कर्म-कर्त्ता नर मूढ़;
प्राप्त नहीं मुझ को कर सकते, आश्रित आसुर-भाव-विमूढ़ ।

आसन्न=लवलीन, प्राप्त । मतिमान=अर्जुन ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

चतुर्विधा भजंते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥१६॥

(१६)

आर्त, मुमुक्षु और अर्थार्थी, ज्ञानी ये चारों नर-रत्न;
अर्जुन ! मुझे भजते हैं, पुण्यवन्त कर के सद् यत्न।

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥१७॥

(१७)

नित्य युक्त भक्ति का ज्ञानी, इन सब से बढ़ कर है मित्र;
अतिशय प्रिय ज्ञानी को मैं हूँ, मुझ को प्रिय ज्ञानी सर्वत्र।

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥१८॥

(१८)

मुझ को ये सब प्रिय हैं फिर भी, ज्ञानी प्रिय है मुझे विशेष;
मेरी गति ही का आश्रय ले, तजता युक्तात्मा निज वेष।

बहूनां जन्मनामंते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥१९॥

(१९)

'यह सब वासुदेव हैं' यदि यह, भाव अधिक जन्म पश्चात;
—आता जिन्हें, वही पुरुषर्षभ, बड़ी कठिनता से हों प्राप्त।

मुमुक्षु=जिज्ञासु। मित्र=अर्जुन। पुरुषर्षभ=मनुष्यों में श्रेष्ठ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यंतेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥२०॥

(२०)

राजस् तामस् प्रकृति विवश फिर, जिन का ज्ञान हुआ है नष्ट;
धन सन्तान आदि हित पूजें, अन्य देव वे पुरुष निकृष्ट ।

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥२१॥

(२१)

जो जो भक्त सश्रद्धा पूजें, जिस तनु को निज सिद्धि हितार्थ;
थिर कर के उन को देता हूँ, सतत अचल श्रद्धा हे पार्थ !

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ॥२२॥

(२२)

श्रद्धा युत उस तन का करता, आराधन पाता संतोष;
किन्तु कामनाएँ वह सब ही, रचता हूँ मैं हे मतिकोप ! ।

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥२३॥

तनु=अग्नि, वायु, सूर्य्य आदि सब ही देवताओं को अंतर्यामी आत्मा का तनु अर्थात् शरीर या मूर्ति वाह्य रूप कहा है इससे तनु का अभिप्राय उक्त देवता से है जो परमात्मा से वैसे ही जीवित हैं जैसे अंतर्यामी आत्मा से यह शरीर ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(२३)

अंतवान फल अल्पज्ञों को, मिलते देव-भक्त को देव;
किन्तु भक्त मेरे मुझ को ही, पा जाते हैं पार्थ ! सदैव ।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परंभावमजानंतो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥२४॥

(२४)

परम और अविनाशी एवम्, सर्वोत्तम भावों को गूढ़;
नहीं जानते मुझ अव्यक्त को, व्यक्त मानते हैं नर मूढ़ ?

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥२५॥

(२५)

सब को प्रगट नहीं मैं होता, रहूँ योग माया आरूढ़;
मुझ अविनाशी और अजन्मा को, क्या जाने जगत विमूढ़ ?

वेदाहं समतीतानि वर्त्तमानानि चार्जुन ।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥२६॥

(२६)

भूत, भविष्यत्, वर्तमान मैं, भली प्रकार जानता पार्थ !
समझ सका है कौन कहाँ कब, कोई भी मेरा तत्वार्थ ।

अंतवान=जो फल ऐसे नाश रहित जो भगवान की शुद्ध स्वरूप की अनन्य भक्ति से मिलते हैं ।

योग माया=परमात्मा के संकल्पानुसार वर्तनेवाली माया को योगमाया कहते हैं ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परंतप ॥२७॥

(२७)

सृष्टिकाल में प्राणिमात्र सब, सुनो परंतप ! पाते मोह;
राग—द्वेष—जनित—द्वंद ही, उनको लेते सदा विमोह ।

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वंद्वमोहनिर्मुक्ता भजंते मां दृढव्रताः ॥२८॥

(२८)

पुण्य-कर्म करने से जिन के, पाप हो गए हैं सब क्षीण;
द्वंद-मोह से हो विमुक्त वे, मुझे भजें दृढ़ व्रती प्रवीण ।

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥२९॥

(२९)

जरा-मरण विमुक्त होने को, मेरे आश्रय से कर यत्न;
ब्रह्म और अध्यात्म कर्म सब, लेते समझ वही नर-रत्न ।

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥३०॥

(३०)

समझें अधिदैवी, अधियज्ञी, अधिभूती का जो तत्वार्थ;
अंत समय भी मुझे जानते, युक्त चित्त वाले वे, पार्थ !

अधिदैवी, अधियज्ञी और अधिभूती=अधिदैव, अधियज्ञ और अधिभूत शब्दों का विशद विवेचन आगामी अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं ही किया है उसे गम्भीरता पूर्वक मनन करने से इनका आशय स्पष्ट हो जाता है ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

आठवाँ अध्याय

अर्जुनः—

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥१॥

ब्रह्म, कर्म, अध्यात्म और क्या, कहलाता है प्रभु ! अधिभूत;
कहते हैं अधिदैव किसे यह, कहिए हे बसुदेव—सपूत !

अधियज्ञः कथं कोत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोसि नियतात्मभिः ॥२॥

(२)

हे मधुसूदन ! इस शरीर में, किसको कहते हैं अधियज्ञ;
अन्त समय में किस प्रकार फिर, उसे जानते हैं नर विज्ञ ?

श्रीभगवानः—

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥३॥

(३)

अक्षर परम ब्रह्म है अर्जुन ! कहलाता अध्यात्म स्वभाव;
जो उपजावै सर्व सृष्टि को, उस को जानौ कर्म-प्रभाव ।

अक्षर=ज्ञान, अज्ञान, देश काल तथा अन्य किसी भी कारण से जिसका नाश न हो ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

अधिभूतं क्षरोभावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतांवर ॥४॥

(४)

नाशवान अधिभूत जानिए, अधिदैवत है जीव महान;
सर्व प्राणियों की देहों में, अर्जुन ! मैं अधियज्ञ समान ।

अंतकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥५॥

(५)

अंत समय मेरा सुमरण कर, जो नर करते हैं तन-त्याग;
निःसंदेह वही नर पाते, मेरा भाव और अनुराग ।

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यंते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौंतेय सदा तद्भावभावितः ॥६॥

(६)

जिन भावों का करके सुमरन, प्राण त्यागते हैं नर-देह;
फिर पा जाता है वह अर्जुन ! उन भावों को निस्संदेह ।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्य संशयम् ॥७॥

(७)

इससे सदा सुमर कर मुझ को, संशय त्याग करो अब युद्ध;
निश्चय मुझे प्राप्त कर लोगे, अर्पण कर मन, बुद्धि प्रबुद्ध ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिंतयन् ॥८॥

(८)

योग और अभ्यास युक्त नर, थिर करते जो चित्त सदैव;
परम दिव्य पुरुषों को वे ही, पा जाते हैं लोक तथैव।

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिंत्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥९॥

(९)

कवि, अनुशासक और पुरातन, महा सूक्ष्म, सर्वज्ञ सुजान;
सब के धाता निर्विकार हैं, रवि समान वे दीप्त महान।

प्रयाणकाले मनसाऽचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैतिदिव्यम् ॥१०

(१०)

अन्त समय जो भक्ति युक्त हो, करै योग होकर निश्चेष्ठ;
भ्रकुटि मध्य प्राण रोक कर, तजैं देह पाते पद-श्रेष्ठ।

यदक्षरं वेदविदो वदंति विशंति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छंतो ब्रह्मचर्यं चरंति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥११॥

(११)

वेद वेत्ता कहते अक्षर, वीतराग यति करें प्रवेश;
जिससे ब्रह्मचर्य्य नर पाते, उसे सुनो संक्षेप नरेश!

अक्षर=अविनाशी। वेद वेत्ता=वेद के जानने वाले।
वीतराग यति=राग द्वेष से रहित यत्नशील मनुष्य।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्यच।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥१२॥

(१२)

रोक सर्व द्वारों को जो नर, उर में मन को करै निरोध;
प्राणों को मस्तक में थिर कर, योग-धारणा का कर शोध!

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥१३॥

(१३)

'ओमित्येकाक्षर' को कह कर, मुझ को सुमरन करके आप्त;
देह त्याग देता है वह ही, पुण्य परमगति करता प्राप्त।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥१४॥

(१४)

सतत अनन्य चित्त से मुझ को, सुमरें जो धर कर के ध्यान;
नित्य युक्त उस योगी को मैं, सदा सुलभ पाण्डव संतान;

निरोध=अवरोध, बन्धन, घेरता है, रोकता है।
'ओमित्येकाक्षर'='ॐ' इस एक अक्षर ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ।
आप्त=दक्ष, कुशल, साक्षात्कृतधर्मा। परमगति=वह गति जिस में "मैं ब्रह्म हूँ" ऐसा सर्वोत्कृष्ट भाव प्राप्त करके 'ब्रह्म लोक' को जाता है और उसका फिर जन्म नहीं होता।
नित्य युक्त योगी=प्रति दिन मेरे स्वरूप का चिंतन करने वाला योगी।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवंति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥१५॥

(१५)

मुझे प्राप्त कर, परम सिद्धि के, पाने वाले सच्चे सन्त;
दुखमय और अशाश्वत जग से, पुनर्जन्म का करते अन्त ।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौंतेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥१६॥

(१६)

ब्रह्म लोक तक सब लोकों की, होती पुनरावृति अनिवार्य्य;
मुझे प्राप्त कर लेने से फिर, जन्म नहीं होता है आर्य्य !

सहस्रयुगपर्यंतमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रां तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥१७॥

(१७)

युग सहस्र ब्रह्मा का दिन हो, युग सहस्र ही में हो रात;
तत्वादर्शी नर ही समझें, दिवस रात्रि का यह अनुपात ।

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयंते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥१८॥

(१८)

ब्रह्मा का दिन आने ही पर, गुप्त शक्ति होती है व्यक्त;
वही रात्रि आने पर फिर से, हो जाती विलीन अव्यक्त ।

अशाश्वत=अनित्य, जो स्थायी न हो । पुनरावृति=बार बार आना ।
अनिवार्य=आवश्यक । आर्य्य=अर्जुन से तात्पर्य है ।
युग=दिव्य युग=चारों युगों को मिला देने से दिव्य युग होता है ।
हमारा एक वर्ष दिव्य युग का दिन रात होता है ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥१६॥

(१६)

जन्म-कर्म के वश में हो कर, उपजैं बार बार ही प्रान;
दिन में होते प्रगट रात्रि में, पा जाते हैं वे अवसान।

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥२०॥

(२०)

विलग किन्तु अव्यक्त भाव से, अन्य सनातन है अव्यक्त;
सब भूतों का नाश हुए भी, रहता वही लोक में व्यक्त।

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥२१॥

(२१)

उस अव्यक्ताक्षर को कहते, पुण्य परम पद जग के लोग;
जन्म नहीं होता फिर उस का, भोगै परम धाम के भोग।

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यांतःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥२२॥

(२२)

परम पुरुष वह स्वयम् हुए हैं, सभी भूति ये जिस को आप्त;
सकल विश्व का व्यापक होता, भक्ति अनन्या से ही प्राप्त।

आप्त=मिले हैं। अनावृत्ति=जन्म मरण से रहित।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृतिं चैव योगिनः ।
प्रयाता यांति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥२३॥

(२३)

पाता अनावृत्ति कब योगी, कब फिर पाता है आवृत्ति;
सुनो परंतप! अब कहता हूँ, उसी समय की सभी विवृत्ति।

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥२४॥

(२४)

अग्नि, ज्योति, दिन, शुक्ल पक्ष में, हों उत्तर-मुख-रवि षट् मास;
—करता बास, अंत पाता है, ब्रह्म वेत्ता ब्रह्म-निवास ।

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णा षण्मासादक्षिणायनम् ।
तत्र चांद्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥२५॥

(२५)

धूम, रात्रि, हो कृष्ण पक्ष हो, दक्षिण-मुख षट् मास निवास;
चन्द्र-ज्योति पा कर फिर लेता, पुनर्जन्म योगी मतिरास ;

शुक्लकृष्णे गतीह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्त्तते पुनः ॥२६॥

(२६)

इस जग की ये शुक्ल-कृष्ण-गति, मानी गई सनातन-वृत्ति;
पाता अनावृत्ति प्रथमा से, और द्वितीया से आवृत्ति ।

आवृत्ति=पुनः जन्म मरण के बन्धन युक्त । विवृति=वृतांत ।
वृत्ति=व्यापार, कार्य्य,प्रकृति ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

नैतेसृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन ।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥२७॥

(२७)

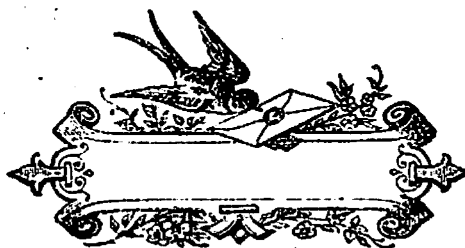
इन दोनों मार्गों का ज्ञाता, पाता नहीं मोह अज्ञान;
अतः सर्व कालों में अब तुम, करौ योग पाण्डव संतान !

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव
दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा
योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥२८॥

(२८)

वेदों, यज्ञों, तपों और दानों से जो फल होता अन्त;
योगी इसे जान कर पाता, उस से बढ़कर ठौर अनन्त ।

ठौर अनन्त=वह स्थान जो सब से ऊँचा, श्रेष्ठ और आदि है और जिसका अंत और पार न हो ।



CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

नवाँ अध्याय

श्रीभगवान:—

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥१॥

तुझ अनसूयवर्य्य से कहता, अति ही गुप्त ज्ञान विज्ञान;
जिसे जान कर अशुभ-मुक्त तू, होगा हे पाण्डव-संतान !

राजविद्याराजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥२॥

(२)

विद्याओं गुह्यों में उत्तम, परम पवित्र और प्रत्यक्ष;
अनुष्ठान जो करें धर्म युत, पाते हैं अविनाशी-पक्ष ।

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप ।
अप्राप्य मां निवर्त्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥३॥

(३)

धार्मिक-श्रद्धा से विहीन नर, नहीं हो सकें मुझ में व्याप्त;
मृत्युलोक—संसार मार्ग में, करते पुनर्जन्म को प्राप्त ।

अनुसूयवर्य्य=गुणों में दोष देखने वाले ।

अशुभ मुक्त=बुरे कर्मों, दोषों, पापों, जन्म मरण अशुभ संसार बन्धन से मुक्त ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्त्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥४॥

(४)

मुझ अव्यक्त-मूर्ति ही से यह, व्याप्त हो रहा सब संसार;
सभी भूत मुझ में थिर रहते, रहूँ न मैं उन के अनुसार।

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्नच भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥५॥

(५)

जीवन दे भूतों को धारण, करता, किन्तु रहूँ स्वाधीन;
नहीं भूत थिर मुझ में मेरा, ईश्वरीय है योग प्रवीन।

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥६॥

(६)

नभ में जैसे व्याप्त पवन है, जिस की गति रहती सर्वत्र;
निश्चय कर, वैसे ही मुझ में, सभी भूत रहते एकत्र।

सर्वभूतानि कौंतेय प्रकृतिं यांति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥७॥

(७)

मेरी प्रकृति प्राप्त करते हैं, प्रलय-काल में सब भव-भूत;
कल्प आदि में उन को फिर से, सृजता हूँ मैं पाण्डव-पूत।

कल्प आदि=सृष्टि के प्रारम्भ में।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥८॥

(८)

प्रकृति-विवश इन सब भूतों को, देकर निज आश्रय मतिमान;
बार बार सृजता हूँ मैं ही, सब को हे भारत संतान !।

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥९॥

(९)

उदासीन वत रहूँ, कर्म से, निरासक्त एवम् निर्द्वंद;
नहीं बाँध सकते हैं मुझ को, रचना-क्रम-कर्मों के छंद ।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते स चराचरम् ।
हेतुनानेन कौंतेय जगद्विपरिवर्त्तते ॥१०॥

(१०)

मेरे ही अधीन यह माया, रचै चराचर विश्व महान;
उससे आवागमन चक्र में जगत घूमता है मतिमान ।

अवजानंति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परंभावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥११॥

(११)

परम भाव मय ईश्वरीय जो, मेरा रूप न जानें गूढ़;
मेरे नर-शरीर का वे ही, करैं अनादर मनुज-विमूढ़ ।

छंद=बंधन, जाल, गाँठ ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

मोघाशामोघकर्माणो मोघज्ञानाविचेतसः ।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहनीं श्रिताः ॥१२॥

(१२)

निष्फल आशा, ज्ञान, कर्म के, पुरुष विचार-हीन जो मूढ़;
प्रकृति आसुरी और राक्षसी पर, वे ही रहते आरूढ़ ।

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।
भजंत्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥१३॥

(१३)

किन्तु महात्मा गण जो लेते, आश्रय दैव-प्रकृति का पार्थ;
मुझे जान अविनाशी कारण, भजते वे अनन्य निस्वार्थ ।

सततं कीर्त्तयन्तो मां यतंतश्च दृढव्रताः ।
नमस्यंतश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥१४॥

(१४)

यत्न शील, दृढ़व्रती भक्तियुत, सतत करें मेरा कीर्तन;
नमस्कार एवम् उपासना, मेरी ही करते निशदिन ।

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजंतो मामुपासते ।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतो मुखम् ॥१५॥

(१५)

सर्व ओर मुख वाले मुझ को, ज्ञान-यज्ञ से भक्त अनन्य;
ध्याते एक रूप से कोई, पृथक् विविध रूपों से अन्य ।

आरूढ=स्थिर, दृढ ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मंत्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥१६॥

(१६)

मैं ही हूँ क्रतु, यज्ञ, स्वधा, घी, मंत्र, अग्नि सब ही एकत्र;
औषधि, हवन-कर्म मैं ही हूँ, गूढ़ मर्म यह कुंतीपुत्र ।

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्सामयजुरेव च ॥१७॥

(१७)

इस जग का मैं माता, धाता, पिता, पितामह हूँ निस्स्वार्थ;
ऋक्, यजु, साम, पवित्र वेद्य भी, ओंकार भी मैं हूँ पार्थ !

गतिर्भर्त्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयस्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥१८॥

(१८)

सब की गति, भर्त्ता, प्रभु, साक्षी, शरण, निवास, सुहृद उत्पत्ति;
प्रलय, स्थान, बीज, अविनाशी, मैं ही हूँ निधान सम्पत्ति ।

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥१९॥

क्रतु=श्रौत यज्ञ. संकल्प, सोम-यज्ञ ।
स्वधा=मंत्रों से पितरों को दिया हुआ अन्न । औषधि=अन्न ।
पिता-माता+पुरुष प्रकृति, शिव-शक्ति, ईश्वर-माया ।
धाता=विधाता, पालने वाला ।
निधान=गुह्य भण्डार, जगत की जमा पूँजी ।
अविनाशी बीज=उत्पत्ति नाश से रहित सब की उत्पत्ति का कारण ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(१९)

ग्रीष्म-ताप देता, बरसाता, और रोकता मैं जल-बिन्दु;
अमृत, मृत्यु, सत् असत् सभी हूँ, मैं ही हे पाण्डव-कुल इन्दु।

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेंद्रलोकमश्नंति दिव्यान् दिवि देवभोगान् ॥२०॥

(२०)

तीनों विद्याओं के ज्ञाता, करें सोम रस का जो पान;
पाप-मुक्त वे शुद्ध, यज्ञ कर, पाते हैं शुभ स्वर्ग-स्थान।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभंते ॥२१॥

(२१)

विशाल स्वर्ग लोक से वे फिर, पुण्य-क्षीण होने पर पार्थ!
मर्त्य लोक में भोग, भोगकर, त्रयी धर्म करते चरितार्थ।

अनन्याश्चिंतयंतो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥२२॥

(२२)

अनन्य निष्ठ जो करके चिन्ता, बनें उपासक मेरे सत्य;
नित्य-युक्त उन पुरुषों को मैं, देता योग-क्षेम का तथ्य।

पाण्डव-कुल-इन्दु=पाण्डव-कुल के चन्द्रमा अर्थात् अर्जुन।
तीनों विद्याओं=वेदों में ऋचाएँ, गीत और युजस्।
सोमरस=यज्ञ से बचे हुए सोमवल्ली के रस (अमृत) को।
त्रयी-धर्म=गद्य, पद्य और गीत, ऋक्, साम और यजुः से विधान किए हुए करने योग्य कर्मों को।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

येऽप्यन्यदेवताभक्त यजंते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौंतेय यजंत्यविधिपूर्वकम् ॥२३॥

(२३)

अन्य देवताओं को जो नर, पूजैं श्रद्धा युत निस्स्वार्थ;
यद्यपि हैं अज्ञानी पर वे, पूज रहे मुझ ही को पार्थ।

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानंति तत्त्वेनातश्च्यवंति ते ॥२४॥

(२४)

कारण मैं ही सब यज्ञों का, भोक्ता, प्रभु हूँ द्रोपदि-कन्त;
नहीं तत्व यह जो नर जानें, अधःपतन पाते हैं अन्त।

यांति देवव्रता देवान् पितॄन्यांति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥२५॥

(२५)

पाते देव-व्रती देवों को, पितृ-व्रती पितरों को अन्त;
भूतों के पूजक भूतों को, मेरे पूजक मुझे अनन्त।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥२६॥

देव व्रती=देवताओं का व्रत करने वाले, देवताओं में श्रद्धा भक्ति रख कर व्रत रखने वाले मनुष्य।

पितृ-व्रती=पितरों में श्रद्धा, भक्ति रखने वाले। श्राद्धादिक कर्मों द्वारा पितरों के पूजक, उपासक और व्रत रखने वाले।

भूतों=भूत, प्रेत, यक्ष, राक्षस आदि के उपासक।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(२६)

पत्र, पुष्प, जल फल श्रद्धा से, भेंट करें जो भक्त उदार;
हो प्रसन्न मैं उस को करता, सतत परंतप ! अङ्गीकार ।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौंतेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥२७॥

(२७)

जो कुछ तू करता खाता है, और होमता, देता पार्थ;
जो कुछ तप तपता उसको भी, कर मेरे अर्पण निस्स्वार्थ ।

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबंधनैः ।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥२८॥

(२८)

कर देगा तब अशुभ और शुभ, फल वाले कर्मों का त्याग;
योग युक्त सन्यास चित्त से, मुझ में हो तेरा अनुराग ।

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
ये भजंति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥२९॥

(२९)

सब में सम हूँ, मुझ को सब ही प्रिय हैं, नहीं किसी से द्वेष;
भजें भक्ति युत मुझे, रहें वे, मुझ में मैं उन में सविशेष ।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मंतव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥३०॥

(३०)

महा दुराचारी नर भी यदि, भजै मुझे हो भक्त अनन्य;
दृढ़ निश्चय वाला वह इससे, गिना जायगा साधू धन्य ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छांतिं निगच्छति ।
कौंतेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥३१॥

(३१)

धर्मात्मा बनता वह सत्वर, पाता नित्य शांति उत्कृष्ट;
अर्जुन ! रख विश्वास हृदय में, मेरा भक्त न होता नष्ट ।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यांति परां गतिम् ॥३२॥

(३२)

वैश्य, शूद्र एवं नारीजन पाप योनि में हैं जो अन्य;
प्राप्त परम गति को करते हैं, मेरे आश्रय से मति धन्य ।

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥३३॥

(३३)

पुण्य विप्र राजर्षि भक्त जन, की फिर कहना ही क्या बात;
इस अनित्य सुख रहित लोक को, पाकर भज मुझ को दिनरात ।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥३४॥

(३४)

इस प्रकार कर यजन नमस्कृति, मन से हो तू मेरा भक्त ;
प्राप्त करेगा मुझ को यदि तू होगा मुझ ही में अनुरक्त ।

वैश्य, शूद्र······पापयोनि=व्यापार में व्यस्त वैश्य, विद्याहीन शूद्र, निकृष्ट या जंजाल में फँसी हुई स्त्रियाँ, जन्म के पापी, अर्थात् अन्त्यज, म्लेच्छ चाण्डाल, वर्णसङ्कर और राक्षस तक ।

यजन=पूजन । नमस्कृति=मन, शरीर और वाणी से मेरा परायण हो ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

दसवाँ अध्याय

श्रीभगवान:—

भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः।
यत्तेहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥१॥

फिर भी मेरे परम वचन को, सुनो परंतप ! धरके ध्यान;
प्रीयमाण जान कर तुम को, कहता हूँ उपदेश महान।

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥२॥

(२)

सुरगण और महर्षि जानते, मेरा कुछ भी नहीं प्रभाव;
कारण, उन का मुझ ही से है, हुआ यहाँ पर प्रादुर्भाव।

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३॥

(३)

मुझे मानते लोक महेश्वर, जो अज, आदि-रहित, अव्यक्त;
मोह रहित मनुजों में वे नर, होते हैं पापों से मुक्त।

प्रीयमाण=श्रद्धा और प्रीतिपूर्वक मेरे उपदेश को सुनकर संतुष्ट होने वाले।
प्रभाव=उत्पत्ति। प्रादुर्भाव=प्रकट हुए, उत्पन्न हुए।
अज=अजन्मा। अव्यक्त=अगोचर।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेवच ॥४॥

(४)

असम्मोह,दम,शम,सुख,दुख,भय,अभय,अहिंसा तपबल,दान;
क्षमा, सत्य, उत्पत्ति नाश या बुद्धि विवेक, और सद् ज्ञान।

अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥५॥

(५)

समता या संतोष अयश, यश, जग के पुण्य और सब पाप;
भूतों के इन सब प्रकार के, भावों का स्रष्टा मैं आप।

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥६॥

(६)

सात महर्षि और पूर्व के, चारों मनु, जिन की ही लोक;
—कहलाती है प्रजा सर्व यह, मुझ से ही पाए आलोक।

असम्मोह=मोह व धोखे से रहित विवेक पूर्ण प्रवृत्ति।
शम=अंतःकरण को वश में करना। स्रष्टा=जन्म देने वाला।
सात महर्षि=भृगु, मरीचि, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ।
चारों मनु=स्वायम्भुव, स्वारोचिष, औत्तमिः, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, दक्ष सावर्णि, ब्रह्म सावर्णि, रुद्र सावर्णि, देव सावर्णि और इन्द्र सावर्णि।
आलोक=प्रकाश में आए, उत्पन्न हुए।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः ।
सोऽविकंपेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥७॥

(७)

जो मेरे इस विभव योग का, जान सके हैं सच्चा तत्व;
निस्संदेह वही पाते हैं, अचल योग का पूर्ण महत्व ।

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते ।
इति मत्वा भजंते मां बुधाभावसमन्विताः ॥८॥

(८)

मैं हूँ जन्मस्थान सभी का, मुझ से होते सभी प्रवृत्त;
ऐसा जान सु बुध भजते हैं, मुझे सदैव भावना-युक्त ।

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥ ९॥

(९)

मुझ में चित्त प्राण अर्पण कर, बोध परस्पर कर हरिनन्द !;
नित्य कथन मेरा ही करते, हो संतुष्ट और सानन्द ।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥१०॥

(१०)

भजें निरन्तर-युक्त भक्त जो, सतत प्रेम जिन में है व्याप्त;
बुद्धियोग देता हूँ उन को, करें मुझे जिस से वे प्राप्त ।

हरिनन्द=इन्द्र पुत्र, अर्जुन । बुद्धियोग=समत्व बुद्धि का योग ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥११॥

(११)

उन के मन में फिर मैं बस कर, ज्ञान-दीप से करूँ प्रकास;
यह अज्ञान जन्य तम कुछ भी, रहै नहीं फिर उन के पास।

अर्जुनः—

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥१२॥

(१२)

परम ब्रह्म हैं, परम धाम प्रभु, परम पवित्र आप भगवान !;
दिव्य, शाश्वतिक पुरुष और अज, आदि देव विभु श्रेष्ठ महान।

आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥१३॥

(१३)

देवल, असित, व्यास,नारद ने, सब ऋषियों ने विविध प्रकार;
यही मुझे बतलाया, प्रभु भी-जिसे कह रहे बारम्बार।

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥१४॥

(१४)

केशव ! जो हैं आप-कह रहे, उसे मानता हूँ मैं सत्य;
देव दनुज भी नहीं जानते, प्रभु की व्यक्ति और मंतव्य।

शाश्वत=भूत, वर्तमान और भविष्यत् सब कालों में एक रस रहने वाले।
व्यक्ति=स्वरुप, प्रभाव, विभूति, प्रताप, प्रकाश तथा प्रकट होने में।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥१५॥

(१५)

हे भूतेश ! भूतभावन प्रभु !, देवदेव, पुरुषोत्तम पूर्ण;
जगन्नाथ हैं आप जानते, आप आप ही को परिपूर्ण ।

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ॥१६॥

(१६)

जिन विभूतियों से थिर होकर, तीनों लोकों में हो व्याप्त;
निज समस्त उन दिव्य भूतियों, को कह सकते केवल आप ।

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन् ।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ॥१७॥

(१७)

करते हुए सतत चिंतन मैं, जानूँ कैसे योगीराज;
किन-किन भावों में चिंतन कर, बन सकता है मेरा काज ।

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥१८॥

(१८)

योग-विभूति सविस्तर अपनी, पुनः जनार्दन कहिए आप;
उन वचनामृत ही से होगी, तृप्त हमारे उर की ताप ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

श्रीभगवान:—

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ॥१९॥

(१९)

प्रमुख-दिव्य-विभूति तथ्य मैं, तुम्हें सुनाता हूँ कुरुश्रेष्ठ;
मेरी सब विभूतियों का तो, नहीं अंत है धर्म-ज्येष्ठ।

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥२०॥

(२०)

अर्जुन सब भूतों के भीतर, आत्मा है मेरा ही ठौर;
उन सब का मैं हर प्रकार से, आदि, मध्य, अन्त हूँ और।

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहंशशी ॥२१॥

(२१)

आदित्यों में विष्णु, ज्योतियों में, रवि हूँ मैं कुन्तीपुत्र !;
मरुतों में मरीचि, नक्षत्रों में, हूँ चन्द्र श्रेष्ठ नक्षत्र।

कुरु श्रेष्ठ=कुरुओं में श्रेष्ठ, अर्जुन। धर्म-ज्येष्ठ=धर्मराज युधिष्ठिर हैं ज्येष्ठ जिन के, अर्जुन।

आदित्यों=१२ आदित्यों में अर्थात्

१ धाता २ मित्रा ३ ऽ र्यमा ४ रुद्रो, ५ वरुणः ६ सूर्य एव च;
७ भगो ८ विवस्वान् ९ पूषा च १० सविता दशमः स्मृतः।
एकादशस्तथा ११ त्वष्टा १२ विष्णु र्द्वादश उच्यते।

ज्योतियों=अग्नि आदि प्रकाश करने वाली ज्योतियों में सर्व श्रेष्ठ सूर्य्य हूँ।

मरुतों=४९ मरुद्गणों में मरीचि जो इन सब में श्रेष्ठ है, मैं हूँ।

नक्षत्रों=२७ नक्षत्रों में सर्व श्रेष्ठ नक्षत्र चन्द्रमा मैं हूँ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥२२॥

(२२)

सामवेद वेदों में जानो, देवगणों में इन्द्र समान;
मन हूँ इन्द्रियादि में एवम्, सब भूतों में चेतन-ज्ञान।

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥२३॥

(२३)

रुद्रों में शंकर यक्षों में, हूँ अर्जुन! मैं धनिक कुबेर,
वसुओं में पावक हूँ एवम्, शिखरों में हूँ शिखर सुमेर;

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ॥२४॥

(२४)

सब पुरोहितों में हे अर्जुन! मुख्य बृहस्पति मुझको जान;
कार्तिकेय सेनापतियों में, सर्व सरों में उदधि महान।

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥२५॥

(२५)

महर्षियों में भृगु, वाणी में, ओंकार अक्षर हूँ एक;
मैं हिमवान पर्वतों में हूँ, यज्ञों में जप-यज्ञ-विवेक।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥२६॥

(२६)

सुर ऋषियों में नारद एवम्, वृक्षों में पीपल का वृक्ष;
चित्ररथी हूँ गंधर्वों में, सिद्धों में हूँ कपिल सुदक्ष ।

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ॥२७॥

(२७)

मैं हूँ अश्वों में उच्चैःश्रव, जो अमृत से है उत्पन्न;
ऐरावत गजेन्द्रों में हूँ, और नरों में नृप सम्पन्न ।

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥२८॥

(२८)

गायों में हूँ कामधेनु मैं, अस्त्रों में हूँ बज्र समान;
कामदेव हूँ प्रजापती में, सर्पों में वासुकि मतिमान ।

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ।
पितृणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ॥२९॥

(२९)

अर्जुन ! नागों में अनन्त हूँ, जलचर में हूँ वरुण स्वरूप;
पितरों में अर्यमा, और हूँ, मैं संयम में यम का रूप ।

अर्यमा=पितृगणों का राजा या देवता ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् ।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥३०॥

(३०)

दैत्यों में प्रहलाद, काल हूँ, ज्योतिर्विद गण को जो श्रेष्ठ;
पशुओं में हूँ सिंह, गरुड़ हूँ, खग-वृन्दों में धर्म-ज्येष्ठ ।

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ।
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी ॥३१॥

(३१)

मैं हूँ पवन वेग वालों में, शस्त्र धारियों में हूँ राम;
मत्स्यों में हूँ मकर, प्रवाहों में, गङ्गा हूँ मैं अभिराम ।

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन ।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ॥३२॥

(३२)

आदि, मध्य, अन्त मैं ही हूँ, सकल सृष्टियों का हे पार्थ;
ब्रह्म विद्या हूँ विद्या में, वाद रहूँ जब हो शास्त्रार्थ ।

काल=समय । ज्योतिर्विद गण=ज्योतिषियों ।
मत्स्यों=मछलियों । मकर=मगर ।
ब्रह्म विद्या=अध्यात्म विद्या ।
वाद=शास्त्रार्थ के मुख्य भेद हैं (१) वाद (२) जल्प और (३) वितण्डा धर्म बुद्धि से जो शास्त्रार्थ सिद्धान्त स्थापन के लिए होता है या गुरु शिष्य के संवाद में जो विचार होता है उसे वाद कहते हैं ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वःसामासिकस्यच ।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः ॥३३॥

(३३)

हूँ अकार मैं अक्षरादि में, सकल समासों में हूँ द्वंद;
मैं हूँ अक्षय काल तथा हूँ, चतुरमुखी धाता निर्द्वंद ।

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्तिःश्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधाधृतिःक्षमा ॥३४॥

(३४)

सर्व हरी मैं मृत्यु, और हूँ, जन्मोद्भव-कारण मतिरास !;
हूँ नारिगण में श्री;-धृति,-यश,-मेधा;-वाणी,-क्षमा-विकास ।

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥३५॥

(३५)

मैं हूँ बृहत्साम सामों में, छंदों में गायत्री छंद;
मार्गशीर्ष मासों में एवम्; ऋतुओं में वसन्त हरिनंद ।

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥३६॥

(३६)

द्यूत रूप छलियों में रहता, तेजस्वियों में तेज समान;
निश्चय सत्व शील वालों का, मैं ही जग में सत्व महान ।

चतुरमुखी धाता=चारों ओर मुखवाले विधाता अर्थात् ब्रह्मा ।
मार्गशीर्ष=अगहन मास ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनंजयः।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ॥३७॥

(३७)

वासुदेव यादव-कुल में हूँ, पाण्डव-कुल में अर्जुन रूप;
मुनियों में हूँ व्यास और, कवियों में हूँ मैं शुक्र स्वरूप।

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥३८॥

(३८)

दण्ड, दमनकारियों का हूँ, विजयकांक्षा की मैं नीति;
ज्ञानी गण का ज्ञान और हूँ, गुह्यों की गुप्त-गति रीति।

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥३९॥

(३९)

सब भूतों में बीज-रूप-वत, रहता मेरा सतत प्रभाव;
नहीं चराचर कोई ऐसा, जिस में मेरा रहे अभाव।

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरोमया ॥४०॥

(४०)

मेरी दिव्य विभूति आदि का, नहीं पा सकता कोई अन्त;
कहा यहाँ संक्षेप मात्र ही, तुझ से मैं ने द्रोपदि-कन्त!

गुह्यों=गोप्यों, गुप्तों।

बीज-रूप-वत=उत्पात्ति का मुख्य कारण।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

यद्यद्विभूति मत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम् ॥४१॥

(४१)

जितने भी ऐश्वर्यवान हैं, शक्ति और लक्ष्मी सम्पन्न;
वे सब मेरे तेज अंश से, हुए जगत में हैं उत्पन्न ।

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥४२॥

(४२)

ऐसा बहुत जानने से है, कौन प्रयोजन पार्थ ? तथैव;
अपने एक अंश से जग को, धारण कर हूँ अचल सदैव ।

एक अंश=एक अंश अर्थात् चतुर्थांश, ऐसा माना गया है कि इस परमात्व देव का यह समस्त संसार एक पाद है और इसके तीन पाद अपने निर्गुण स्वयम् ज्योति स्वरूप में स्थित हैं ।

अचल=स्थित ।



CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

ग्यारहवाँ अध्याय

अर्जुनः—

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥१॥

मेरे हित जो परम गुप्त यह, अध्यातम दिखलाया आप;
इससे मोह जनित सब मेरे, दूर हुए हैं सब दुष्पाप ।

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ॥२॥

(२)

कमल-नयन ! विस्तार पूर्वक, निस्संदेह सुना सब ज्ञान;
भूतों की उत्पत्ति प्रलय अक्षय महात्म्य मैंने भगवान !

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥३॥

(३)

हे परमेश्वर ! जैसा कहते, आप वही हैं त्रिभुवन भूप;
तौ भी पुरुषर्षभ इच्छा है, देखूँ वह ऐश्वर्य्य-स्वरूप ।

पुरुषर्षभ=पुरुषों में श्रेष्ठ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥४॥

(४)

प्रभो ! आप यदि उचित समझते, देख सकूँगा मैं वह रूप;
तब योगेश्वर! दिखा दीजिए, वह अविनाशी मुझे स्वरूप।

श्रीभगवानः—

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥५॥

(५)

विविध भाँति के दिव्य और नाना वर्णों से संयुत गात;
शत सहस्र आकृतियों युत यह, देख रूप अब मेरा तात !

पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥६॥

(६)

आदित्यों, बसुओं, रुद्रों को, अश्विनिसुत, मरुतों को देख;
देखे नहीं कभी थे उन को, अब आश्चर्यों में अवरेख।

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥७॥

(७)

सकल विश्व चर अचर सहित तू, इस शरीर में सब एकत्र;
जो इच्छा हो उसे और भी, कुंती-पुत्र ! देख ले अत्र।

अवरेख=देख।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥८॥

(८)

इन नेत्रों से योग देखना, दुष्कर है पाण्डव संतान;
दिव्य नेत्र देता हूँ तुम को, देखो मेरा रूप महान।

संजयः—

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः ।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥९॥

(९)

राजन् ! ऐसा कह कर हरि ने, निज योगेश्वर महा स्वरूप;
अर्जुन को दिखलाया फिर तो, परम ईश्वरीय वह रूप।

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥१०॥

(१०)

थे अनेक मुख, नेत्र विविध थे, अद्भुत दर्शन से संयुक्त;
दिव्य अनेक भूषणों युत थे, दिव्य शस्त्र अस्त्रों से युक्त।

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥११॥

(११)

दिव्य वस्त्र माला युत था तन, दिव्य गंध अनुलेपन धार,
सर्वाश्चर्य्य अनन्त दिव्य था, सर्व दिशाओं को मुख-द्वार।

दुष्कर=कठिन। संयुक्त=साथ।
युक्त=साथ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥१२॥

(१२)

रवि सहस्र भी निज किरणों से, यदि नभ में जो करें प्रकास;
सम्भव है हो उस महात्मा, की आभा के तुल्य विकास ।

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ॥१३॥

(१३)

तब अर्जुन ने सर्व जगत को, विविध भाँति से हुआ विभक्त;
देखा प्रभु के उस शरीर में, एक ठौर ही सब संयुक्त ।

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनंजयः ।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत ॥१४॥

(१४)

रोमांचित हो आया उस को, साश्चर्य वह देख स्वरूप;
कर प्रणाम कर बद्ध कृष्ण से, लगा बोलने यों अनुरूप ।

अर्जुनः—

पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूत विशेषसंघान् ।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥१५॥

आभा=प्रभा, कांति । संयुक्त=इकट्ठे, स्थित, एक साथ मिले हुए ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(१५)

कमलासन युत ब्रह्मा, ऋषिगण, दिव्य सर्प आदिक सब देव;
भूत समूह आपके तन में, देख रहा हूँ मैं हे देव!

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं
पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ॥१६॥

(१६)

विविध उदर, मुख, बाहु नेत्रयुत, हर विधि हैं प्रभु आप अनंत;
विश्वेश्वर! मिल रहा आपका, नहीं आदि मध्य या अन्त।

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम्।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ता
द्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥१७॥

(१७)

मुकुट, गदा, चक्र युत एवम्, तेज प्रकाश आदि के पुंज;
अग्नि प्रज्वलित रवि सम देखूँ, अप्रमेय प्रभु रूप-निकुंज।

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥१८॥

अप्रमेय=जिसका कोई प्रमाण दिखलाई न देता हो, जो प्रमाण से सिद्ध न हो सके।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(१८)

शाश्वत-धर्म सुरक्षक अव्यय, हैं प्रभु आप विश्व आधार;
मुमुक्षुओं को परमाक्षर हो, सतत सनातन पुरुष उदार।

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य
मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम्।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥१९॥

(१९)

रहित आदि, मध्य, अन्त से, अनन्त शक्ति बाहु, मुख आप,
रवि शशि नेत्र, ज्वलित मुखवाले, जग में व्याप्त आपका ताप।

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्चसर्वा
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥२०॥

(२०)

सकल दिशाएँ गगन भूमि सब, पाते हैं प्रभु से आलोक;
अद्भुत उग्र रूप देख कर, काँप रहे हैं तीनों लोक।

अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति
केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः
स्तुवन्ति त्वांस्तुतिभिः पुष्कलाभि ॥२१॥

शाश्वत=नित्य वा अनादिकाल से। अव्यय=नित्य वा निर्विकार।
मुमुक्षुओं=जिज्ञासुओं। परमाक्षर=परम अक्षर+अक्षर=अविनाशी।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(२१)

कर प्रवेश कितने ही सुर-गण, गुण-गण गाते हैं कर बद्ध;
हो कल्याण, महर्षि सिद्ध सब, कहते हैं स्तुति-सन्नद्ध।

रुद्रादित्यावसवो ये च साध्या
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥२२॥

(२२)

विश्व देवता, अश्विन सुत, वसु, मरुत, रुद्र, यक्ष, आदित्य;
साध्य, उष्मपा असुर सिद्ध सब, बिस्मित देख रहे हैं नित्य।

विश्वदेवता=दस विश्वदेव माने गए हैं यथाः—"वसुः सत्यः क्रतुर्दक्षः कालः कामो धृतिः कुरुः पुरूरवा माद्रघश्च विश्व देवाः प्रकीर्त्तिताः"

रुद्र आदि=रुद्र आदि ३३ देवता माने गए हैं अन्य इन की ही विभूतियाँ कही गई हैं। ३३ देवता इस प्रकार हैं।

८ वसु=(अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा और नक्षत्र)
११ रुद्र=पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय और ११ वाँ मन)
१२ आदित्य (वर्ष के बारह मास)
१ इंद्र

३२

उष्मपा=पितर { पितरों को उष्मपा इस लिए कहते हैं कि श्राद्ध में उन्हें जो अन्न अर्पण किया जाता है उसे वे तब ही तक ग्रहण करते हैं जब तक वह गरम रहता है।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं
महाबाहो बहुबाहूरुपादम्।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं
दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ॥२३॥

(२३)

बिबिध नेत्र, मुख, पाद, बाहु, उर, उदर, भयानक दंष्ट्र समेत;
रूप देख मैं, सर्व लोक भी, काँप रहे हैं दया निकेत!।

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं
व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम्।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा
धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो ॥२४॥

(२४)

नभ-स्पर्शी, व्यात्तानन बहु-दिव्य रङ्ग, दृग-दीप्त-विशाल;
—देख, खो रहा धैर्य्य शान्ति को, मैं व्याकुल चित हे यदुपाल!

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि
दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि।
दिशो न जाने न लभे च शर्म
प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥२५॥

उरु=जंघा। दंष्ट्र=दाढ़। दया निकेत=दया के घर, भगवान श्री कृष्ण।
नभस्पर्शी=आकाश से स्पर्श करते हुए, बहुत ही बड़े।
व्यात्तानन=खुले हुए मुख में। बहु-दिव्य-रङ्ग=प्रकाशमान अनेक रङ्गोंवाला।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(२५)

काल अग्नि वत दंष्ट्र देख कर, हो न दिशाओं का आभास;
हो प्रसन्न विश्रांति दीजिए, देव ईश अब जगन्निवास।

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे सहैवावनिपालसंघैः।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥२६॥

(२६)

धार्तराष्ट्र युत अन्य नृपादिक, भीष्म, द्रोण, कर्ण के साथ;
मेरे भी कितने ही योधा, व्याकुल हुए भूल कर पाथ।

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु
संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ॥२७॥

(२७)

कितने ही योधा तो दब कर, दांतों में होगए विचूर्ण;
लटक रहे दाँतों में है यह, दृश्य भयानक प्रभु सम्पूर्ण।

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः
समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति।
तथा तवामी नरलोकवीरा
विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥२८॥

विश्रांति=विश्राम, आराम, सुख। पाथ=मार्ग।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(२८)

जैसे जल-प्रवाह सरिता का, जाता सत्वर सागर पास;
वैसे ही नर लोक वीर ये, करते प्रभु-प्रज्वल-मुख-वास ।

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतंगाः
विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोका-
स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥२९॥

(२९)

नाश विवश प्रभु-मुख में जाते, वे सब यही होरहा दृष्ट;
द्रुतगति से प्रज्वलित ज्वाला में, जैसे होते कीट विनष्ट ।

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता-
ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं
भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥३०॥

(३०)

चाट रहे हो जीभ, बना कर, सबको प्रज्वलित मुख का ग्रास;
तपा रहा है सकल विश्व को, प्रभु का ही यह उग्र प्रकास ।

दृष्ट=दिखलाई देता है । द्रुत गति=वेग से, शीघ्रता से ।
कीट=कीड़े, पतंग । विनष्ट=नाश ।
ग्रास=कौर । उग्र-प्रकाश=तीव्र प्रभा, किरणें ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्य
न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥३१॥

(३१)

उग्र रूप में कौन आप हैं, हो प्रसन्न अब उस का तत्व;
कहिए जिससे जान सकूँ मैं, प्रभु-प्रवृत्ति का आद्य-प्रभुत्व।

श्रीभगवान:—

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥३२॥

(३२)

लोकों का क्षय करने को मैं, हूँ प्रवृत्त अति-काल-विशेष;
तुम यदि नहीं इन्हें मारोगे, तो भी रहै न कोई शेष।

उग्र रूप=भयङ्कर, क्रूर, रुद्र, रूप ।

आद्य=आदि रूप, प्रारम्भिक रूप ।

लोकों का क्षय=पृथ्वी के दुष्ट भार रूप प्राणियों का नाश करने वाला और प्रलय काल में लोको के सब प्राणियों का नाश करने वाला ।

प्रवृत्त=तत्पर । अति-काल-विशेष=बड़ा भारी फैला हुआ, अत्यंत उग्र रूप वाला काल विशेष । शेष=बाकी, मरने से न बचेंगे ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून्भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥३३॥

(३३)

मैं इन को संहार चुका हूँ, तुम तो हो निमित्त ही मात्र;
उठो धनंजय! इन्हें मार कर, भोगो राज्य, बनो यश-पात्र।

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथंच
कर्णं तथान्यानपि योधवीरान्।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥३४॥

(३४)

कर्ण, जयद्रथ, भीष्म, द्रोण युत, समरारूढ़ वीर जो अन्य;
मरे हुए हैं, निर्भय अब तुम, करौ युद्ध, जय-लाभ अनन्य।

संजयः—

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य
कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं
सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥३५॥

निमित्त मात्र=नाम मात्र के लिए। धनंजय=अर्जुन।
यश-पात्र=यश प्राप्त करो।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(३५)

केशव के वचनों को सुनकर, कम्पित तन से हो कर बद्ध;
नमस्कार कर अर्जुन बोला, गद्गद वाणी भय सम्बद्ध।

अर्जुन:—

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः॥३६॥

(३६)

हृषीकेश! आप का कीर्त्तन, देता हर्ष और अनुराग;
सिद्ध समूह नमन करते हैं, भागें असुर सभय धी त्याग।

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे।
अनन्त देवेश जगन्निवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत्॥३७॥

(३७)

हो अनन्त, देवेश, जगत्पति, ब्रह्मा के भी गुरु अनुरूप;
क्यों न विश्व फिर नमन करै जब, आप सच्चिदानन्द स्वरूप।

सम्बद्ध=सहित, साथ। नमन=प्रणाम, नमस्कार। सभय=भय सहित।
धी=बुद्धि। अनन्त=देश काल वस्तु से अपरिछिन्न।
ब्रह्मा के भी गुरु अनुरूप=ब्रह्मा से भी बड़े, श्रेष्ठ या गुरू और आदि कर्त्ता हो। सच्चिदानन्द= सत+चित+आनन्द।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥३८॥

(३८)

आदि देव हो पुरुष पुरातन, परम निधान, अनन्त स्वरूप;
परम धाम, सर्वज्ञ, विश्व यह—एक आप ही का है रूप ।

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥३९॥

(३९)

पवन, अग्नि, यम, बरुण, प्रजापति, महापितामह चंद्र सुधन्य-
—हैं प्रभु आप, सहस्र बार हैं, मेरे विविध प्रणाम अनन्य ।

आदि देव=जगत को आप ही उत्पन्न करते हैं अतएव आप आदि देव हैं।
पुरातन०अनादि और इस शरीर के नश्वर होने पर भी आप प्रलय-काल में भी उससें रहित रहते हैं इससे पुरातन हैं
परम धाम=अंत में आप ही को प्राप्त करने में मुक्ति मिलती है अतएव परम धाम हो ।

प्रजापति= महा पितामह { ब्रह्मा से मरीचि आदि सात मानस पुत्र हुए और मरीचि से कश्यप तथा कश्यप से सारी प्रजा इससे मरीचि को प्रजापति कहते हैं ब्रह्मा जो मरीचि आदि के पिता अर्थात् महा पितामह हैं ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥४०॥

(४०)

अमित पराक्रम, सर्व-रूप-युत, हो प्रभु ! अति अनंत बलधाम;
आगे, पीछे, सर्व दिशाओं से, करता हूँ नाथ ! प्रणाम।

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥४१॥

(४१)

सखा मानकर हे यदुनन्दन!, हो प्रभु-महिमा से अनभिज्ञ;
अनुचित वाक्य बहुत कह डाले, प्रणय प्रमाद विवश हे विज्ञ।

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥४२॥

(४२)

सोते, खाते और बैठते, क्रीड़ा में मित्रों के साथ;
किया अनादर हो तो उसको, क्षमा कीजिए सब यदुनाथ!

प्रणय=स्नेह, प्रेम। प्रमाद=भूल से। क्रीड़ा में=खेलते में, हँसी में।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥४३॥

(४३)

पिता चराचर के हो अच्युत !, पूज्य और गुरु, गुरुतर धन्य;
बढ़कर कहाँ कौन आप से, आप समान नहीं है अन्य ।

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥४४॥

(४४)

पिता पुत्र की, मित्र मित्र की, प्रेमी प्रेम पात्र की भूल,—
—करते क्षमा, उसी विधि मुझको, क्षमा कीजिए, हो अनुकूल ।

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
तदेव मे दर्शय देव रूपं
प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥४५॥

(४५)

देख विराट् रूप व्याकुल मन, पाता हर्ष और है त्रास;
सौम्य रूप में दर्शन मुझ को, आप दीजिए जगन्निवास ।

गुरु=शास्त्रों का उपदेश आपसे ही मिलता है इससे आप गुरु हैं ।
गुरुतर=ब्रह्मा तथा प्रजापति को भी आपने उपदेश दिया है इससे गुरु के भी गुरु हो ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त-
मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ॥४६॥

(४६)

गदा, मुकुट, चक्र युत दर्शन, फिर दीजे हे त्रिभुवन-भूप;
सहस्रबाहु हे विश्वमूर्ति प्रभु!, धरिए आप चतुर्भुज रूप।

श्रीभगवान:—

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं
रूपं परं दर्शितमात्मयोगात्।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं
यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥४७॥

(४७)

आदि अनन्त और तेजोमय, योग युक्त यह रूप अनन्य;
अब तक नहीं किसी ने देखा, हुए देख केवल तुम धन्य।

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानै-
र्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रै:।
एवंरूप: शक्य अहं नृलोके
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥४८॥

(४८)

क्रियाओं से या करने से, वेद-यज्ञ, उग्र-तप, दान।
देख नहीं सकते हैं कोई, मुझ को हे पाण्डव-सन्तान!

त्रिभुवन-भूप=तीनों लोक के स्वामी, भगवान। सहस्रबाहु=सहस्रों भुजा वाले। चतुर्भुज=चारों दिशाओं की रक्षा करने वाले।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो
दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम् ।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं
तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥४६॥

(४९)

मेरा घोर रूप देख कर, मत कर मूढ़-भाव उत्पन्न;
तज भय, व्यथा, मुग्ध चित्त हो, देख रूप, सौम्य-सम्पन्न ।

संजयः—

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा
स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः
आश्वासयामास च भीतमेनं
भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥५०॥

(५०)

वासुदेव ने ऐसा कह कर, दिखलाया निज पूर्व स्वरूप;
धैर्य बँधाया फिर अर्जुन को, इस प्रकार हे कौरव-भूप ।

अर्जुनः—

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥५१॥

(५१)

सौम्य-मनुष्य-रूप देखकर, हृषीकेश ! मैं हुआ सचेत;
मन भी पूर्व प्रकार हुआ है, अब मेरा थिर दयानिकेत !

घोर=भयानक, विकराल, क्रूर, उग्र आदि भावों युक्त रूप ।
कौरव-भूप=धृतराष्ट्र ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

श्रीभगवानः— सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः ॥५२॥

(५२)

सुरगण आकांक्षा करते हैं, जिसे प्राप्त करने को नित्य;
दुर्लभ है जग में, वह तुमने, देखा मेरा रूप अनित्य।

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥५३॥

(५३)

जिस प्रकार तुमने देखी है, रूप-राशि पाण्डव-कुल-धन्य!
वेदाध्ययन, तप, दान, यज्ञ से, देख नहीं सकते हैं अन्य।

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥५४॥

(५४)

किन्तु परंतप! पा सकते हैं, मुझ को मेरे भक्त-विशेष;
इसी प्रकार तत्व से मुझ को, जानें, देखें करें प्रवेश।

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥५५॥

(५५)

मेरे लिए कर्म करते हैं, परम-भाव जिन में है व्याप्त;
वैर, सङ्ग त्यागी वे मेरे, भक्त कर सकें मुझ को प्राप्त।

आकांक्षा=अभिलाषा, इच्छा। पाण्डव-कुल-धन्य=अर्जुन।
परम-भाव=मुझे परम माननेवाला, जिसका परम लक्ष्य मैं हूँ।
वैर सङ्ग त्यागी { जिसको किसी से वैर-भाव नहीं है। जिसको पुत्रादि के संग की आसक्ति नहीं है।
प्राप्त=मेरे परम स्वरूप में लीन हो जाता है।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri



CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन । ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥

GITA PRESS, GORAKHPUR

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

बारहवाँ अध्याय

अर्जुनः—

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥१॥

ऐसे युक्त उपासक या जो, अव्यक्ताक्षर करते ध्यान;
श्रेष्ठ कौन दोनों योगों में, अब मुझसे कहिए भगवान ।

श्रीभगवानः—

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥२॥

(२)

सच्चे मन से मुझ में रखते, नित्य-युक्त जो श्रद्धावान;
वही उपासक माने जाते, अर्जुन! सब से श्रेष्ठ महान ।

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥३॥

(३)

सब भूतों के हित में रत जो, सभी इन्द्रियाँ लेते जीत;
समदर्शी अव्यक्ताक्षर को, भजते वे गुण गरिमातीत ।

अव्यक्ताक्षर=अव्यक्त अक्षर, अविनाशी अव्यक्त रूप से ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥४॥

(४)

अकथनीय, कूटस्थ, अचल, अति, अचिंतनीय वे होकर आप्त;
सर्व व्यापी अटल ब्रह्म से, करते हैं मुझ ही को प्राप्त ।

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥५॥

(५)

क्लेश अधिक होता है उन को, जो होते अव्यक्तासक्त;
गति अव्यक्त कठिनता से ही, पाते वे जो हों अनुरक्त ।

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥६॥

(६)

सब कर्मों को मेरे अर्पण, करते रहते भक्त-अनन्य;
मुझे परमगति-दाता मानें, ध्यावें, बनें उपासक धन्य ।

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामिनचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥७॥

कूटस्थ=एक स्थान में कूट के समान स्थित रहने वाला ।
अथवा माया का अध्यक्ष ।
अटल ब्रह्म=एक स्थान पर नित्य स्थिर और अपरिणामी ।
क्लेश······ अनुरक्त=ऐसे अव्यक्त के प्रेमियों को कष्ट अधिक होता है क्योंकि मनुष्यों से अव्यक्त-गति कठिनता से पाई जाती है ।
परम-गति-दाता=मोक्ष देने वाला ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(७)

मुझ में ऐसे जो नर अपना, चित्त लगाते सर्व प्रकार;
मृत्यु रूप भवसागर से मैं, करूँ शीघ्र उन का उद्धार।

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥८॥

(८)

मुझही में थिर कर निज मन को, लगा बुद्धि मुझमें बलवान;
तब तू बास करैगा मुझ में, इस में संशय नहीं सुजान।

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय ॥९॥

(९)

मुझमें मन थिर करने में यदि, हो सकता है नहीं समर्थ;
तब अभ्यास योग कर अर्जुन, मुझे प्राप्त करने के अर्थ।

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥१०॥

मुझ······सुजान=मुझ, सगुण ब्रह्म में अपने मन की सब वृत्तियों को मेरे ध्यान में लगा दे अन्य सब विषयों की चिंता त्याग कर केवल मेरे ही चिंतन में बुद्धि लगादे ऐसा करने से शरीर छोड़ने के पश्चात् निः संदेह तू मुझ ही में बास करेगा।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(१०)

यदि अभ्यास-योग करने में, होता है जो तू असमर्थ;
सिद्धि मिलेगी तुझको यदि तू, करै कर्म सब मेरे अर्थ।

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥११॥

(११)

इस में भी अशक्त है तो फिर, मेरा योगाश्रय-अनुराग–
–कर तू, एक चित्त ही हो कर, कर्म-फलों का करके त्याग।

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥१२॥

(१२)

अभ्यासों से ज्ञान श्रेष्ठ है, उस से बढ़कर है फिर ध्यान;
त्याग-कर्म-फल उससे बढ़कर, जो देता है शांति महान।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥१३॥

(१३)

द्वेष रहित जो प्राणिमात्र पर, मैत्री और दया का भाव—
—रखते हैं, कर सकते जिन पर, सुख दुख अपना नहीं प्रभाव

अभ्यास-योग=जब जब चित्त इधर उधर भटके तब तब उसे रोक कर मेरी ही ओर उसे लगाने का अभ्यास कर।

योगाश्रय-अनुराग=लौकिक या वैदिक कर्मों को फल की आशा छोड़ कर के कर।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१४॥

(१४)

अहंकार ममता के त्यागी, दृढ़-निश्चय संयम-अनुरक्त;
करें बुद्धि मन अर्पण वे सब, प्रिय हैं मुझको मेरे भक्त।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥१५॥

(१५)

हर्ष, क्रोध, भय, उद्वेगों से, रहता जग में सतत विमुक्त;
प्रिय वह मुझको, रहे नहीं जो, जग-उद्वेगों में संयुक्त।

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१६॥

(१६)

निस्पृह, चतुर, पवित्र, उदासी, करें व्यथाएँ जो निःशेष;
सब सकाम-कर्म-फल-त्यागी, है प्रिय मुझको भक्त विशेष।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥१७॥

हर्ष……संयुक्त=जिससे संसार उद्वेग नहीं करता (अर्थात् क्लेश, दुःख, संताप और त्रास को नहीं पाता है) और संसार से जो उद्वेग नहीं करता है। और जो हर्ष, क्रोध, भय और उद्वेगों को छोड़ देता है वह मेरा प्यारा भक्त है।

निस्पृह=निरपेक्ष। निःशेष=दूर।

सकाम-कर्म-फल-त्यागी=लोक परलोक के फलों के लिए जो कर्म किए जाते हैं उन सब सकाम कर्मों के फलों को त्यागने वाला।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(१७)

हर्ष, द्वेष, शोक, इच्छा में, जिसे नहीं हो हर्ष-विषाद;
त्यागी शुभ या अशुभ कर्म का, दे प्रिय भक्त मुझे आह्लाद।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥१८

(१८)

शत्रु-मित्र, अपमान-मान, या दुख-सुख जिसको एक समान;
उष्ण-शीत सम करके देखे, सङ्ग रहित है जो मतिमान।

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥१६॥

(१६)

निन्दा, स्तुति सम कर माने, मौनी, संतोषी, अनिकेत;
थिर मति का ऐसा नर मुझको, अति प्यारा है शौर्य-निकेत !

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥२०॥

(२०)

धर्म युक्त अमृत को जो नर, यथोक्त रीति से करते पान;
हैं अति ही प्रिय मुझको वे सब, भक्त-परायण श्रद्धावान।

त्यागी शुभ या अशुभ कर्म का=पुण्य और पाप दोनों ही प्रकार के कर्मों के फल का त्यागी अर्थात् अपना कर्तव्य समझ कर कर्म करने वाला।
संग रहित=किसी का संग न करने वाला, एकान्त में वास करने वाला।
मौनी=मित भाषी, मौन धारण करने वाला, वाक् इन्द्रिय का निरोधक।
अनिकेत=गृह कार्यों में निरासक्त, कर्म फल की आशा न रखने वाला।
शौर्य निकेत=अर्जुन। धर्म युक्त अमृत=धर्म रूपी अमृत।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

तेरहवाँ अध्याय

श्रीभगवान:—

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥१॥

यह शरीर क्षेत्र और है, जीवात्मा क्षेत्रज्ञ महान;
कहा गया ऐसा ही इसके, तत्व वेत्ताओं से ज्ञान।

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥२॥

(२)

मैं क्षेत्रज्ञ सभी क्षेत्रों में, रहता हूँ हे धर्म-ज्येष्ठ;
क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ ज्ञान का, ऐसा है मेरा मत श्रेष्ठ।

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत्।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ॥३॥

(३)

क्षेत्रों की उत्पत्ति कौन है, कौन प्रयोजन और विकार;
क्षेत्रज्ञों के भी प्रभाव का, थोड़े में कहता हूँ सार।

क्षेत्र= संसार-अकुंर की भूमि, कर्म रूपी बीजों के फल का उत्पत्ति स्थान अर्थात खेत।

क्षेत्रज्ञ= शरीर-क्षेत्र, खेत ही की तरह जब होता है जो इस क्षेत्र का जाननेवाला है वही चेतनात्मा क्षेत्रज्ञ है।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् ।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥४॥

(४)

विविध प्रकार विविध छंदों में, ऋषियों द्वारा पूर्ण महत्व;
पृथक् पृथक निश्चित सयुक्ति है, गाया ब्रह्म-सूत्र-पद-तत्व ।

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ॥५॥

(५)

पृथिवी, वायु, तेज, जल, नभ, युत, गर्व, बुद्धि और अव्यक्त;
एकादश इन्द्रियाँ कर रहीं, पंचेन्द्रिय-गोचर भी व्यक्त ।

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः ।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥६॥

(६)

इच्छा, द्वेष, दुःख, सुख एवम्, धृति, संघात, चेतना युक्त;
यह संक्षेप रूप क्षेत्र का, कहा विकारों से संयुक्त ।

विविध छंदों=यजु, ऋगु और साम आदि वेदों में ।
ऋषियों=वशिष्ठ, पाराशर आदि ऋषियों ने ।
निश्चित सयुक्ति=निश्चित अर्थों और निर्णयों सहित ।
ब्रह्म सूत्र=वेदान्त सूत्र ।
एकादश इन्द्रियां=ग्यारह इन्द्रियां जैसे:—
कर्म-इन्द्रियां=हाथ, पांव, गुदा, लिङ्ग और वाणी=५ }
ज्ञान-इन्द्रियां=नेत्र, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा=५ } १०+१ मन ११
पंचेन्द्रिय-गोचर=शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ।
धृति=चित्त को दृढता देने वाली वृत्ति ।
संघात=पांच तत्वों का परिणाम रूप ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचंस्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥७॥

(७)

मान-दम्भ-हीनता एवम्, क्षमा, सरलता, थिरता और;
आत्म विनिग्रह, गुरु सेवा युत, हिंसा रहित शुद्ध शिरमौर ।

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ।
जन्ममृत्यु जराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥८॥

(८)

इन्द्रियार्थ में जो वैरागी, एवम् अहङ्कार से हीन;
जन्म-मृत्यु, या जरा व्याधि के, दुःख-दोष देखते प्रवीन ।

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यंच समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥९॥

(९)

दारा, घर, पुत्रों में निर्मम, होते, नहीं कभी आसक्त;
इष्ट-अनिष्ट-प्राप्ति, समता से, देखें, रहते सतत विरक्त ।

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥१०॥

(१०)

अटल भक्ति मुझमें रखते हैं, करें अनन्य-भाव का योग;
बनते हैं एकान्त निवासी, जन-समूह से करें वियोग ।

दारा=स्त्री । निर्मम=ममता रहित ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥११॥

(११)

नित्य आत्म-ज्ञान-रत रहते, करते तत्व-ज्ञान का ध्यान;
कहलाता है यही ज्ञान सब, है विपरीत अन्य अज्ञान ।

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥१२॥

(१२)

जिसे जान नर अमृत पाता, कहता हूँ अब मैं वह ज्ञेय;
परे असत् और सत् से भी, जिसका परम ब्रह्म है ध्येय ।

सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥१३॥

(१३)

जितने हाथ, पाँव, सिर, मुख या, नेत्र, कान, हैं कुंतीपुत्र!
उन सब में उस परम-ब्रह्म की, व्यापक सत्ता है सर्वत्र ।

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥१४॥

(१४)

इन्द्रिय-गुण से भासमान है, परे सभी से ब्रह्म-स्वरूप;
है असक्त पर पाले सब को, गुण भोगै हो निगुर्ण रूप ।

ज्ञेय=परम ब्रह्म । परे=रहित ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥१५॥

(१५)

ओत-प्रोत है प्राणि-मात्र में, जड़ जङ्गम में ब्रह्म-ज्ञेय;
निकट ज्ञान के दूर अन्य को, सूक्ष्म, अतः है अति अविज्ञेय।

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥१६॥

(१६)

है अविभक्त, विभक्त भाँति है, सब भूतों में एक समान;
उत्पादक, पोषक, संहारक, एक ब्रह्म ही है मतिमान।

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥१७॥

(१७)

तेजों का भी तेज और है, सतत अन्धकार से हीन;
ज्ञान, ज्ञेय हो ज्ञान गम्य वह, सब के हृदयों में आसीन।

ओत-प्रोत=भीतर बाहर सब भांति से।
जड़ जङ्गम=चर अचर।
निकट ज्ञान के=ज्ञानियों के लिए अत्यन्त निकट।
दूर अन्य के=अज्ञानियों के लिए दूर।
अति अविज्ञेय=जो दरसाया न जा सके, जाना न जा सके।
उत्पादक=उत्पन्न करने वाला = ब्रह्मा।
पोषक=पालनेवाला=विष्णु। संहारक=संहार करनेवाला=रुद्र या महेश।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥१८॥

(१८)

क्षेत्र, ज्ञान, ज्ञेय का ऐसा, थोड़े में बतलाया वृत्त;
मेरा भक्त जान कर इस को, ब्रह्म-रूप में करै प्रवृत्त ।

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥१९॥

(१९)

प्रकृति पुरुष दोनों अनादि हैं, यही समझ ले, रण-सम्पन्न;
करती प्रकृति सदैव जगत में, गुणों, विकारों को उत्पन्न ।

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥२०॥

(२०)

कार्य्य-करण-कारण में रहती, मेरी ही यह प्रकृति-प्रधान;
सुख दुःखों के भोगों में हो, कारण सतत पुरुष बलवान ।

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥२१॥

(२१)

पुरुष प्रकृति ही में थिर होकर, भोगै प्रकृति जनित सब भोग;
गुण-प्रवृत्ति से मिलै जन्म फिर, अच्छी बुरी योनि का योग ।

रण-सम्पन्न=अर्जुन । कार्य्य=स्थूल शरीर । करण=शरीर की -
- दस इन्द्रियाँ और चारों अंतःकरण । कारण=हेतु ।
प्रकृति-जनित=प्रकृति से उत्पन्न हुए ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥२२॥

(२२)

इस शरीर में पुरुष अन्य वह, होता है उपद्रष्टा और;
भर्त्ता, महेश्वर, अनुमन्ता, भोक्ता परमात्मा शिरमौर ।

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ॥२३॥

(२३)

प्रकृति, पुरुष को गुणों सहित जो, सतत जानता इसी प्रकार;
नहीं जन्म पाता वह फिर से, रत रह कर भी सर्व प्रकार ।

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥२४॥

(२४)

आत्मा में आत्मा से देखें, आत्मा को जो धर के ध्यान;
कोई सांख्य योग से कोई, कर्म-योग द्वारा मतिमान !

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥२५॥

(२५)

अन्य पुरुष जो मुझको ध्यावें, विज्ञों से सुन सुन कर ज्ञान;
श्रुति में परम परायण वे भी, पा जाते हैं मोक्ष निदान ।

उपद्रष्टा=समीप बैठकर देखने वाला। अनुमन्ता=अनुमोदन करने वाला।
श्रुति में परम परायण=वे श्रद्धालु जो सुने हुए उपदेशानुसार पूर्ण निश्चय से दत्त चित्त आत्मा का चिंतन करते हैं।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥२६॥

(२६)

जितने भी पदार्थ जड़ जङ्गम, जग में होते प्रादुर्भूत;
क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ-योग से ही होते हैं पाण्डव-पूत ।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तंयः पश्यति स पश्यति ॥२७॥

(२७)

जड़ जङ्गम जग के नश्वर हैं, अविनाशी है ईश्वर एक;
वह सब में सम रहे अमर हो, जो जानै यह सत्य विवेक ।

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥२८॥

(२८)

जग के सब जीवों में ईश्वर, रहता समता ही से व्याप्त;
आत्मा को अविनाशी समझें, वे नर करें परम गति प्राप्त ।

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ॥२९॥

(२९)

प्रकृति कर्म करती है, यह ही, जो नर समझें सर्व प्रकार;
कर्म नहीं आत्मा करती है, जिन के हैं यह ठीक विचार ।

प्रादुर्भूत=उत्पन्न । योग=संयोग । पाण्डव पूत=अर्जुन ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥३०॥

(३०)

पृथक् भाव भूतों के जो नर, समझे एक भाव में लग्न;
देखे एक भूत में सब को, होता ब्रह्म-रूप में मग्न ।

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥३१॥

(३१)

अनादि और निर्गुण होने से, अव्यय परमात्मा का रूप;
—है देहस्थित किन्तु रहै यह, कर्म-मुक्त निर्लिप्त-स्वरूप ।

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥३२॥

(३२)

सर्व व्यापी नभ जैसे है, सूक्ष्म, नहीं होता है लिप्त;
वैसे ही शरीर में रह कर, आत्मा रहती है निर्लिप्त

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥३३॥

निर्गुण=गुणातीत, किसी प्रकार के गुण और धर्मों से परिच्छिन्न नहीं ।
अव्यय=जन्म मरणादि विकार रूपी व्ययों से रहित ।
देहस्थित=शरीर में रहते हुए भी ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(३३)

एक सूर्य इस अखिल लोक को, आलोकित करता मतिरास;
वैसे ही इस सकल क्षेत्र को, देता है क्षेत्रज्ञ प्रकाश।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ॥३४॥

(३४)

भूतों की जो मोक्ष प्रकृति को, अंतर क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ;
ज्ञान-चक्षु से देख जानते, पाते पूर्ण परम गति विज्ञ।

आलोकित=प्रकाशित।
पूर्ण परम गति=मोक्ष।



CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

चौदहवाँ अध्याय

श्रीभगवानः—

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥१॥

सब ज्ञानों में परमोत्तम अब, कहता हूँ तुम से वह ज्ञान;
जिसे जान कर परम सिद्धि मुनि, पाए हैं पाण्डव-संतान !

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥२॥

(२)

जिस के आश्रय से वे मुनिवर, पाते मेरा रूप अटूट;
सृष्टि काल में और प्रलय में, जन्म-मरण से जाते छूट ।

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम् ।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥३॥

(३)

मेरी महद्-ब्रह्म योनि है; उस में निज संकल्प-स्वरूप;
बीज डाल कर सब भूतों को, प्रकटाता हूँ पाण्डव-भूप !

रूप अटूट=मेरा ही साधर्म्य रूप । मेरा ही अखण्ड रूप ।

महद् ब्रह्म=ब्रह्म का उपाधि रूप, समस्त कार्यों की उत्पत्ति और वृद्धि का कारण होने से ।

योनि=गर्भाधान का स्थान, सब भूतों का उत्पत्ति-स्थान ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥४॥

(४)

सकल योनियों में से जितनी, हों उत्पन्न मूर्तियाँ पार्थ ! ;
महद् ब्रह्म है योनि सभी की, पिता तुल्य मैं हूँ निस्स्वार्थ ।

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥५॥

(५)

प्रकृति जनित सत्व, रज, तम गुण, हो शरीर में प्रादुर्भूत;
निर्विकार जीव को बाँधें, हे विशाल-भुज-पाण्डव-पूत !

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ ॥६॥

(६)

उन में निर्मल और प्रकाशक, रोग रहित सत्व-गुण-अङ्ग;
बाँधे इस शरीर को अर्जुन ! ज्ञान और सौख्य के सङ्ग ।

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम् ।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम् ॥७॥

(७)

रागात्मक, तृष्णायुत करता, रज-गुण का जग प्रादुर्भाव;
कर्म समेत बाँधता है जो, इस शरीर को, सरल-स्वभाव !

हे विशाल-भुज पाण्डव-पूत=बड़ी बाहुओं वाले पाण्डु पुत्र अर्थात् अर्जुन ।
सरल-स्वभाव=हे सरल स्वभाव वाले अर्जुन !

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥८॥

(८)

मोहक है अज्ञान जन्य जो, वही तमोगुण का है रूप;
प्रमाद, आलस, निद्रा से वह, जीव बाँधता पाण्डव भूप !

सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत ।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ॥९॥

(९)

सत-गुण सुख में और रजोगुण, करै कर्म ही में अनुरक्त;
ज्ञान आवरण ढक कर करता, तम गुण सतत प्रमाद-प्रयुक्त ।

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत ।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ॥१०॥

(१०)

रज, तम, गुण के जीते होता, अर्जुन ! सत्व सतत बलवान;
सत्व, रजोगुण के कम होते, होता तम गुण प्रबल महान ।

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥११॥

(११)

इस शरीर के सब द्वारों में, जब हो ज्ञान-प्रकाश-प्रवेश;
तब समझो है प्रबल सत्व गुण, हे पाण्डव-कुल-कमल-दिनेश !

आवरण=परदा, ढक्कन ।
पाण्डव-कुल-कमल-दिनेश=अर्जुन ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

लोभ: प्रवृत्तिरारम्भ: कर्मणामशम: स्पृहा ।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ॥१२॥

(१२)

लोभ, प्रवृत्ति, कार्यारम्भों में इच्छा-अशान्ति-सम्पन्न;
हो तव समझो वृद्धि पा रहा, रजगुण हो कर के उत्पन्न ।

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥१३॥

(१३)

मोह, प्रमाद युक्त और जब, हो प्रवृत्ति-प्रकाश-विहीन;
तब समझो यह जीव हो रहा, वृद्धि तमोगुण में है लीन।

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत ।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥१४॥

(१४)

तजता है जो देह उस समय, रहता है जब सत गुण व्याप्त;
उत्तमवित् निर्मल लोकों को, करता है तब वह नर प्राप्त ।

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥१५॥

प्रवृत्ति=कामों में दिन रात लगे रहना ।
कार्य्यारम्भों=नए नए कार्य्यों को आरम्भ करना ।
उत्तमवित्=उत्तम देवताओं के जानने वाले और उपासक ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(१५)

कर्म-सङ्गियों में जन्में वे, रजगुण में जो हों अवसान;
जन्म-मूढ़-योनि में पाते, तम-गुण-युक्त पुरुष-अज्ञान।

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम्।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥१६॥

(१६)

सात्त्विक कर्मों मे मिलते हैं, फल निर्मल सतगुण-संयुक्त;
रजगुण का फल दुःख, तमोगुण का फल हो अज्ञान-प्रयुक्त।

सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥१७॥

(१७)

सतगुण मे हो ज्ञान, लोभ हो रजगुण से पाण्डव-संतान!;
हों उत्पन्न तमोगुण ही मे, मोह, प्रमाद और अज्ञान।

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥१८॥

(१८)

मिलता ब्रह्म-लोक सतगुण, से पाते रजगुण से नर योनि;
तमगुण वाले पाते जग में, परम निम्न, पशु-पक्षी योनि।

कर्म-सङ्गियों=कर्म-फलों में आसक्ति रखने वालों। अवसान=मरण।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति ।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥१६॥

(१६)

जो ज्ञानी इन तीन गुणों के, भिन्न मानता नहीं प्रभाव;
गुणातीत वह मुझ को जानै, तब पाता है मेरा भाव ।

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् ।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥२०॥

(२०)

देह-जन्म-दाता इन तीनों, गुण को जो करते हैं पार;
जरा-जन्म-मृत्यु-मुक्त वे, पाते अमृत, जीवन-सार ।

अर्जुनः—

कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ॥२१॥

(२१)

गुणातीत के कौन चिह्न हैं, और कौन उस के आचार ?
तीन गुणों को किस प्रकार वह, कर जाता है प्रभुवर ! पार ?

श्रीभगवानः—

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव ।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि ननिवृत्तानि काङ्क्षति ॥२२॥

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(२२)

करता नहीं द्वेष यदि हो वह, मोह-प्रवृत्ति-प्रकाश-प्रवृत्त;
नहीं करै आकांक्षा उन की, गुणातीत यदि रहै निवृत्त।

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते ॥२३॥

(२३)

विचलित नहीं गुणों से होता, उदासीन सम रहै सदैव;
'वर्त रहे गुण' ऐसा समझे, नहीं डुलावै चित्त तथैव।

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुति ॥२४॥

(२४)

आप रहै थिर अपने ही में, सुख दुख जिसको एक समान;
सम कर देखै मिट्टी, पत्थर, कंचन प्रिय या अप्रिय सुजान।

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥२५॥

(२५)

शत्रु-मित्र, अपमान-मान या निन्दा संस्तुति सतत समान;
त्यागी सब धंधों का, उसको गुणातीत कहते विद्वान।

मोह······प्रवृत्त=प्रकाश (सत्व गुण का कार्य्य) प्रवृत्ति (रजोगुण का कार्य्य) और मोह (तमोगुण का कार्य्य) इन तीनों गुणों के कार्य्यों में जब प्रवृत्त हो रहा हो। निवृत्त=दूर।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥२६॥

(२६)

भक्ति-योग से सतत भजै जो, मुझ को मेरा भक्त अनन्य;
योग्य ब्रह्म-भाव के होता, पार करै वह सब गुण अन्य ।

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥२७॥

(२७)

अमृत, अव्यय-ब्रह्म और मैं, शाश्वत-धर्म-शास्त्र का ज्ञान;
एकान्तिक सुख की मैं ही हूँ, सदा प्रतिष्ठा बुद्धिनिधान ।

ब्रह्म-भाव=ब्रह्म स्वरूप अर्थात् शरीर त्यागने पर ब्रह्म स्वरूप हो जाता है ।
अमृत........बुद्धिनिधान=अमृत रूप, शाश्वत रूप, धर्म रूप और अखण्ड सुख रूप, निर्विकार सोपाधिक ब्रह्म है वह अखण्ड सुख पा जाता है क्योंकि उसका अंतिम स्थान मैं ही हूँ उससे कैवल्य मुक्ति मिल जाती है ।



CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

पन्द्रहवाँ अध्याय

श्रीभगवान:—

ऊर्ध्वमूलमध:शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥१॥

ऊर्ध्व मूल हैं, शाखा नीचे, अविनाशी, अश्वत्थ स्वरूप;
पत्त छंद, वेद वेत्ता ही समझें इस का यह रूप ।

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवाला: ।
अधश्च मूलान्यनुसंततानि
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥२॥

(२)

नीचे ऊपर शाखाएँ हैं, प्राप्त गुणों से करतीं वृद्धि;
विषय कोंपलें मृत्यु लोक में, कर्म-बन्ध जड़ हुईं विवृद्धि ।

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते
नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल-
मसंगशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥३॥

ऊर्ध्व=ऊपर । अश्वत्थ=अव्यय, अनन्त । विवृद्धि=फैली हुई ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(३)

पाते वैसा रूप नहीं है, इसका आदि, मध्य या अन्त;
दृढ़ असङ्ग शस्त्र से इसको, काट सकें जो नर बुधवन्त।

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥४॥

(४)

अन्वेषण करते उस पद का, नहीं जहाँ से लौटें लोग;
आदि पुरुष की शरण ले रहा, फैले जिस से गुण-मय-भोग।

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥५॥

(५)

मान-मोह, सुख-दुख-द्वंदों से, और कामना रहित अमूढ़;
सङ्ग दोष जय कर पाते हैं, मेरा अविनाशी पद-गूढ़।

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥६॥

(६)

रवि, शशि, पावक भी उस पद को, दे सकता है नहीं प्रकाश;
जिसे प्राप्त कर नहीं लौटता, पाता परम-धाम का वास।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥७॥

(७)

जीव-लोक में जीव सनातन, रहता मेरा अंश अनित्य;
मन युत पंचेन्द्रिय को खींचे, थिर हो रहै प्रकृति में नित्य।

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥८॥

(८)

जब यह जीव जन्म लेता है, या करता शरीर का त्याग;
ले जाता तब इन्द्रियगण को, जैसे पवन गंध का भाग।

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥९॥

(९)

रसना घ्राण, नेत्र, कान युत, त्वचा और निज हृदय समेत;
जीव भोगता पा कर आश्रय, इन का ही है शौर्य-निकेत!

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥१०॥

(१०)

देह त्यागते, देहस्थित या, करते हुए विषय का भोग;
गुण-युत-अज्ञानी क्या समझें, देखें ज्ञानी उसका योग।

घ्राण=नाक।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ॥११॥

(११)

देखें निज हृदयस्थित योगी, रहते हुए सदैव सयत्न;
अविवेकी अशुद्ध उर वाले, नहीं हो सकें सफल प्रयत्न ।

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥१२॥

(१२)

सूर्य-ज्योति-चैतन्यात्मक में, जिससे पाता जगत प्रकाश;
अग्नि, चन्द्रमा में भी अर्जुन ! मेरा ही है तेज, विकाश ।

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ॥१३॥

(१३)

कर प्रविष्ट पृथिवी में, देता, सब भूतों को तेजस्तोम;
करता पुष्ट महौषधियों को, मैं ही बन कर रस-मय-सोम ।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥१४॥

(१४)

हो जठराग्नि प्राणियों की मैं, देहों में करता हूँ वास;
देता पचा चार अन्नों को, प्राण-अपान-युक्त मतिरास !

महौषधियों=वनस्पतियों । रस-मय-सोम=रस रूप चन्द्रमा ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥१५॥

(१५)

सब के हृदयास्थित हूँ, पाते, मुझ से ही सब स्मृति ज्ञान;
वेद-वेत्ता कर्त्ता हूँ मैं, जानें मुझे वेद-विद्वान ।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥१६॥

(१६)

क्षर अक्षर दो पुरुष मात्र ही, व्याप रहे जग में सर्वत्र;
प्राणि मात्र क्षर, एवम् अक्षर, है कूटस्थ, पाण्डु के पुत्र !

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥१७॥

(१७)

सर्वोपरि है पुरुष किन्तु जो, इन से परमात्मा वह एक;
तीनों लोकों को धारण कर, पालै पोषै सहित विवेक ।

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥१८॥

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(१८)

मैं क्षर से अतीत, अक्षर से भी, जग में हूँ श्रेष्ठ महान;
लोक वेद इससे प्रसिद्ध हूँ, मैं ही पुरुषोत्तम भगवान।

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥१६॥

(१९)

पुरुषोत्तम विचार कर मुझ को, मोह रहित वह नर निस्स्वार्थ;
सब ज्ञानों का ज्ञानी भजता, सब भावों से मुझको पार्थ!

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥२०॥

(२०)

सब से गुह्य-ज्ञान-शास्त्र का, तुम्हें सुनाया हे निष्पाप; !
इसे जान कर हो जाता है, नर कृतकृत्य प्राज्ञवर आप।

क्षर से अतीत=नाशवान्, स्वप्नवत् मायामय इस संसार रूप क्षर से परे।
गुह्य-ज्ञान-शास्त्र=गुप्त ज्ञान, ऐसा ज्ञान जिस से वेद शास्त्र और सम्पूर्ण गीता का सार है।
हे निष्पाप=सब पापों, व्यसनों से रहित अर्थात् अर्जुन।
कृतकृत्य=कृतार्थ, जब कुछ और कर्म करने को शेष न रहे, सफल।
प्राज्ञवर=बुद्धिमान्।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

सोलहवाँ अध्याय

श्रीभगवान:—

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥१॥

ज्ञान योग और निर्भयता, यज्ञ, दान, दम अंतःशुद्धि;
सत्य, अहिंसा, स्वाध्याय, तप, त्याग, सरलता में है बुद्धि ।

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥२॥

(२)

शांति, अक्रोध, धैर्य्य, शुचि युत वे, चुग़ली द्रोह भाव से दूर;
प्राणि मात्र पर दया, रहें जो, लज्जा, तेज, क्षमा भर पूर ।

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥३॥

(३)

निर्लोभी, कोमल, अचपलता, तजते अतिमानी दुष्भाव;
दैवी-सम्पति से जो जन्में, उनके होते यही स्वभाव ।

दैवी-सम्पत्ति=देवताओं से सम्बन्ध रखनेवाली सम्पति, परमात्मा के भाव को प्राप्त करने वाली सम्पदा ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ॥४॥

(४)

दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोधयुत, पारुष्य अज्ञानों का भाव;
जन्में जो आसुरी-सम्पदा से उन के हों यही स्वभाव ।

दैवी संपद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता ।
मा शुचः संपदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ॥५॥

(५)

दैव-सम्पदा मुक्ति-प्रदायक, असुर-सम्पदा बन्धन अर्थ;
दैव-सम्पदा में जन्मे तुम, त्याग शोक सब सूर समर्थ ।

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च ।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ॥६॥

(६)

दैवी और आसुरी जग में, दो प्रकार की सृष्टि सदैव;
दैवी तुम सुन चुके अधिक हो, सुनो आसुरी प्रकृति तथैव ।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥७॥

पारुष्य=रूखे, कड़वे कठोर वचन कहनेवाला ।
आसुरी सम्पदा=आसुरी-सम्पत्ति का आश्रय लेकर जन्म लेने वाले ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(७)

प्रवृत्ति और निवृत्ति ज्ञान को, नहीं जानते आसुर-वृंद;
शुद्ध, सत्य आचार-भाव से, होते वे विहीन मति मंद।

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥८॥

(८)

वे कहते "मिथ्या यह जग है", ईश्वर और प्रतिष्ठा हीन,
कामदेव हित अपरस्पर से, प्रादुर्भाव कहें वे दीन।

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥९॥

(९)

उग्र-कर्म वाले नष्टात्मा, अल्प बुद्धि ऐसे ही मूढ़;
लेकर दृष्टि आश्रय होते, लोक नाश हित शत्रु विमूढ़।

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥१०॥

(१०)

कठिन कार्य्यों का आश्रय ले, दम्भ, मान, मद से संयुक्त;
मिथ्या निश्चय, मोह युक्त वे, रहते अशुचि व्रतों में युक्त।

प्रवृत्ति निवृत्ति=किन कार्य्यों को करना चाहिए और किन कार्य्यों को नहीं करना चाहिए।

अपरस्पर=पर और अपर से भिन्न जो स्त्री पुरुष हैं इन दोनों के परस्पर संयोग से।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपश्रिताः ।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥११॥

(११)

"विषयों का उपभोग परम है" जिनका है निश्चय यह एक;
घेरे रहती हैं चिंताएँ, प्रलय समय तक उन्हें अनेक ।

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान् ॥१२॥

(१२)

काम क्रोध में रहें परायण, शत आशा-पाशों में बद्ध;
काम-भोग हित जोड़ें धन को, अन्यायों में हो सन्नद्ध ;

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥१३॥

(१३)

प्राप्त कर चुका इसे आज मैं, कल पाऊँगा उसे तथैव;
यह धन मेरा है वह धन भी, पा जाऊँ अब मैं हे दैव !

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥१४॥

(१४)

मुझ से मारा गया शत्रु वह, मारूँगा उस को जो अन्य;
मैं हूँ ईश्वर, भोगी एवम्, सिद्ध, सुखी, बलवान, अनन्य ।

प्रलय समय तक=मरण पर्यन्त ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥१५॥

(१५)

मैं कुलीन, धनवान व्यक्ति हूँ, मेरे तुल्य कौन है और;
यज्ञ, दान, आनन्द करूँगा, कहते अज्ञानी शिरमौर ।

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥१६॥

(१६)

भ्रांति-चित्त-वाले ऐसे नर, रहते मोह-जाल से बद्ध;
गिरते हैं अपवित्र नरक में, हो कर विषय-भोग-सन्नद्ध ।

आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥१७॥

यज्ञ, दान, आनन्द=आशय यह है कि इस प्रकार की प्रवृत्ति वाले पुरुषों की यह धारणा होती है कि अब मेरे पास यथेष्ट द्रव्य है अतः मैं अपनी कीर्ति के लिए यज्ञ करूँगा उस में जो मेरी प्रशंसा करेंगे उनको रुपए लुटाऊँगा इससे मेरा बड़ा नाम होगा तब मैं आनन्द करूँगा उस अभिमान में

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(१७)

अपने आप बड़े बन अकड़ें, रहते धन-मद-मान-निकेत;
नाम मात्र के करें यज्ञ वे, अविधि पूर्वक दम्भ समेत।

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥१८॥

(१८)

अहङ्कार, बल, दर्प, क्रोध युत, कामाश्रय से निंद्य-स्वभाव;
अपनी और अन्य देहों में, रक्खें मुझ से द्वेषी-भाव।

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥१९॥

धन-मद-मान-निकेत=धन के मद से अहंकार में भरे हुए। धन के मद में जिनके हृदय को अहंकार ने अपना घर बना लिया हो।

नाम मात्र=नाम ही के लिए अर्थात् दूसरों को दिखलाने के लिए।

अविधि पूर्वक=यज्ञ-विधि में अश्रद्धा भाव से अर्थात् केवल इस धारणा से कि लोग उन्हें यज्ञ करने वाला और धर्म कर्म करने वाला समझें। वास्तविक रूप उसका पाखण्ड पूर्ण ही होता है।

मुझसे द्वेषी भाव=मेरी सर्व व्यापकता में वे संशय करते हैं और सब शरीरों में मुझे नहीं मानते हैं इस प्रकार मेरे श्रुति-स्मृति-ज्ञान की अवज्ञा करके मुझही से द्वेष करते हैं।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(१९)

क्रूर, नीच, विद्वेषी एवम्, अशुभ आचरण वाले भ्रष्ट;
लोकों में मुझसे पाते हैं, सतत आसुरी-योनि निकृष्ट।

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥२०॥

(२०)

इस प्रकार आसुरी-योनि में, पुरुष विमूढ़ रहें जो व्याप्त;
नहीं मुझे जन्मान्तर पावें, सतत अधोगति करते प्राप्त।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥२१॥

(२१)

काम, क्रोध, लोभ तीनों हैं, नरक-द्वार इनका अनुराग;
-नष्ट आत्मा को करता है, अतःउचित है इनका त्याग।

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥२२॥

(२२)

तम के इन तीनों द्वारों से, जो नर हो जाता है मुक्त;
वही परम गति को पाता है, हित-आचरणों से हो युक्त।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

य: शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥२३॥

(२३)

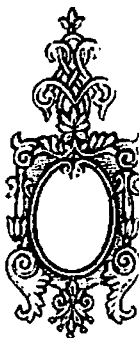
त्याग शास्त्र-विधि जो नर चलता, निज इच्छा ही के अनुसार;
उसे सिद्धि, सुख और परम गति, नहीं मिल सकै किसी प्रकार ।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥२४॥

(२४)

कार्य्य-अकार्य्य-व्यवस्था में हों, शास्त्र प्रमाण, समझ कर मर्म;
-शास्त्रोक्त-विधि ही से तुम को, करना सभी चाहिए कर्म ।

कार्य्य-अकार्य्य-व्यवस्था=कौन कार्य्य करना चाहिए और कौन कार्य्य नहीं करना चाहिए इसकी व्यवस्था के लिए शास्त्रों के प्रमाण देखना चाहिए ।



CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

सत्रहवाँ अध्याय

अर्जुन:—

येशास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ॥१॥

कृष्ण ! शास्त्र-विधि को जो तज कर, करें यज्ञ श्रद्धा संयुक्त;
होती उन की निष्ठा कैसी, सत्त्व, रज या तम से युक्त ।

श्रीभगवान:—

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ॥२॥

(२)

सात्विक, राजस और तामसी, निज स्वभाव ही के अनुसार;
देहधरियों की होती है, अर्जुन ! श्रद्धा तीन प्रकार ।

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥३॥

(३)

अर्जुन ! सब की श्रद्धा होती, निज अंतः उर के अनुसार;
जिस की जिस में श्रद्धा होती, होता है वह उसी प्रकार ।

निष्ठा=उत्कर्ष, व्यवस्था ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः ।

प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः ॥४॥

(४)

सात्विक देव-वृन्द को पूजैं, असुर यक्ष, राजस-गुण-युक्त;

भूत, प्रेत, पिशाच पूजते, तामस-गुण से जो संयुक्त ।

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।

दम्भाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥५॥

(५)

दम्भ, गर्व, बल, काम, सहित जो, रखते हैं अपने में राग;

शास्त्र विरुद्ध किया करते हैं, घोर तपस्या का अनुराग ।

कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।

मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ॥६॥

(६)

देहस्थित भूतों को एवम्, मुझे, रहूँ जो देहारूढ़,—

—दुर्बल, शिथिल और कृश करते, प्रकृति आसुरी के नर मूढ़ ।

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ।

यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥७॥

देहारूढ़=शरीर के भीतर स्थित ।

कृश=वृथा उपवासादि करके शरीर को दुर्बल करते हैं । धूनी जला कर उल्टे लटकते हैं तथा और भी अनेक निरर्थक शास्त्र विरुद्ध तपों को करके देह को और देह के भीतर स्थित मुझ को दुख दे कर दुर्बल करते हैं । ऐसे गर्हित कार्य्यों को भगवान् कृष्ण ने आसुरी प्रकृति में माना है ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(७)

तीनों रूपों में रहता है, सब ही का आहार विभक्त;
अर्जुन ! सुन, ऐसे ही हों सब, यज्ञ, दान, तप में अनुरक्त।

आयुःसत्त्वबलारोग्य-
सुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या
आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥८॥

(८)

बल, उत्साह, आयु, सुख वर्द्धक, मधुर, सचिक्कण, सार प्रयुक्त;
सतोगुणी पुरुषों का होता, है आहार स्वास्थ्य-संयुक्त।

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥९॥

(९)

दाहक, रूखा, तीक्ष्ण, उष्ण, कटु, खट्टा हो नमकीन, पसन्द-
-है आहार रजोगुणी को, देता रोग, शोक-दुख-द्वंद।

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥१०॥

(१०)

ठण्डा, कच्चा, बासी, जूँठा, दुर्गंधित, अशुद्ध, निस्सार;
तमोगुणी को प्यारा होता, इस प्रकार ही का आहार।

आहार=भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, और चोष्य।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ॥११॥

(११)

यज्ञ-फलाशा-त्याग शास्त्रविधि से जो नर निष्कामी प्रज्ञ-
-निज कर्तव्य समझ कर करते, कहते उसको सात्त्विक यज्ञ ।

अभिसंधाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत् ।
इज्यते भरत श्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥१२॥

(१२)

फलोद्देश्य से यज्ञ करें जो, केवल अपने दम्भ हितार्थ;
युक्त कामना से होता है, राजस-यज्ञ सुनो हे पार्थ !

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥१३॥

(१३)

श्रद्धा-शून्य अविधि पूर्वक जो, मंत्रहीन उच्चारण-भ्रष्ट;
अन्नदान, दक्षिणा रहित हो, वही तामसी-यज्ञ निकृष्ट ।

देवद्विजगुरु प्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥१४॥

(१४)

देव, विप्र, गुरु, विद्वानों का, पूजन करै, सरलता, शुद्धि-
-रहै अहिंसा ब्रह्मचर्य युत, शारीरिक तप की यह बुद्धि ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥१५॥

(१५)

अनुद्वेग कारक, हित कर प्रिय, बोलें वचन सत्य संयुक्त;
स्वाध्याय-रत रहते जो नर, होते वाचिक-तप से युक्त ।

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥१६॥

(१६)

आत्म विनिग्रह, सौम्य भाव युत, रखते वे प्रसन्न मन शुद्ध;
मानस-तप कहलाता जिनकी, होती है भावना विशुद्ध ।

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ॥१७॥

(१७)

त्याग फलाशा, श्रद्धा युत जो, परम समाहित चित्त समेत;
सात्त्विक-तप कहलाता उसको, करते ऐसे शौर्य निकेत !

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥१८॥

(१८)

पूजा, मान और आदर हित, करते जो तप दम्भ-प्रयुक्त;
है वह राजस-तप जो होता, चंचल और अदृढ़ संयुक्त ।

अनुद्वेगकारक=जो सुनने वाले को दुःख या क्लेश का उद्वेग न करे ।
आत्म विनिग्रह=अपने आप को वश में रखना, मन की वृत्तियों का निरोध ।
चंचल और अदृढ़=न टिकने वाला, क्षणिक ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥१९॥

(१९)

मूढ़ाग्रह से शत्रु नाश हित, अन्यों को दे कर दुख कष्ट;
जो तप करते वह कहलाता है तामस-तप घोर निकृष्ट।

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥२०॥

(२०)

देश-काल सुपात्र समझ कर, अनुपकार कर्त्ता को दान;
निज कर्तव्य समझ कर देते, वह है सात्त्विक दान-प्रमान।

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥२१॥

(२१)

प्रत्युपकार प्राप्त करने को, फलोद्देश्य युत क्लेश समेत;
दिया दान जाता है जो भी, वह राजस है बुद्धि निकेत।

मूढ़ाग्रह=मूर्खता भरे आग्रह या निश्चय से युक्त।
देश=तीर्थस्थान जैसे, प्रयाग, हरिद्वार आदि।
काल=सूर्य ग्रहणादि तथा अन्य पुण्य पर्वों के अवसर पर।
अनुपकार-कर्त्ता=जिससे उपकार की आशा न हो लूला लङ्गड़ा सुपात्र विप्र।
प्रत्युपकार प्राप्त=जो दान इस आशा से दिया जाता है कि इस के बदले में दान पाने वाला उनका कुछ उपकार करेगा या इस प्रकार दान देने से मुझे लौकिक या पारलौकिक फल मिल जायगा।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥२२॥

(२२)

विना देश काल के सोचे, तिरस्कार युत, आदर हीन;
दें कुपात्र को दान वही है, तामस दानों में मतिपीन !

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥२३॥

(२३)

तत् सत् और ॐ यह तीनों, ब्रह्म-नाम-सुमरन-निर्देश-
-किए गए हैं, हुए इसी से, विप्र-यज्ञ-वेद-उपदेश ।

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः ।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्म वादिनाम् ॥२४॥

(२४)

अतः शास्त्रोक्त क्रियाएँ, और यज्ञ, तप, दान, समस्त;
'ओम्' करें उच्चारण फिर हों, ब्रह्म-वेत्ता कार्य्य-प्रवृत्त ।

तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपःक्रियाः ।
दानक्रियाश्चविविधाःक्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥२५॥

(२५)

त्याग फलाशा 'तत्' कह कर जो, करते बिबिध यज्ञ, तप, दान;
होते कार्य-प्रवृत्त सभी वे, मोक्षाकांक्षी पुरुष महान ।

कुपात्र=दम्भी, वेश्यागामी, जुआरी, चोर, ठग पण्डों या ब्राह्मणों को ।
ॐ=ओम्; अकार, उकार, मकार, अ, उ, म् अर्थात् ब्रह्म नाम ।
मोक्षाकांक्षी=मोक्ष-पद के चाहने वाले ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥२६॥

(२६)

साधु और सद्भावों में नर, करते हैं 'सत्' नाम प्रयोग;
शब्द जोड़ 'सत्' करते हैं सब, मङ्गल कर्मों में उपयोग ।

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥२७॥

(२७)

यज्ञ, दान, तप की निष्ठा में, रहता है 'सत्' रूप तथैव;
तदर्थनीय कर्म में होता, 'सत्' उच्चारण पार्थ ! सदैव ।

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥२८॥

(२८)

हवन, दान, तप जो कुछ भी नर, करै अश्रद्धा से संयुक्त;
जीवनान्त या जीवन में हो, 'असत्' कर्म वह निष्फल युक्त ।

निष्ठा=स्थिर भावना, स्थिति ।



CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

अठारहवाँ अध्याय

अर्जुन:—

संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥१॥

महाबाहु हे हृषीकेश हरि, केशिनिषूदन हे निष्पाप;
पृथक पृथक सन्यास त्याग का, तत्व मुझे बतलाएँ आप ।

श्रीभगवान:—

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥२॥

(२)

काम्य-कर्म के त्यागी को कवि, सन्यासी कहते नरपाल;
सर्व कर्मों के फल त्यागी को, कहते त्यागी बुद्धि विशाल ।

महाबाहु केशिनिषूदन=विशाल भुजा बल वाले, केशी दैत्य के बध करने वाले । इन विशेषणों को यहाँ रखने का अभिप्राय यह है कि आप बाहर के सब दुःख दूर करने में समर्थ हैं ।

हृषीकेश=इस अभिप्राय से कहा गया कि आप में भीतर के दुःख दूर करने की शक्ति है ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥३॥

(३)

कर्म दोषवत् त्याज्य सदा हैं, कहते हैं कोई मति धन्य;
नहीं त्यागने योग्य कहें फिर, यज्ञ, दान, तप कोई अन्य ।

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः ॥४॥

(४)

उन त्यागों में सुन भरतर्षभ,! मेरा निश्चय विषम-विभाग;
कहा गया है हे पुरुषर्षभ,! तीन भाँति का जग में त्याग ।

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥५॥

(५)

यज्ञ, दान, तप नहीं त्याज्य है, करने योग्य सदा मति गेह;
करते उर पवित्र विज्ञों का, यज्ञ, दान, तप निस्संदेह ।

एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च ।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥६॥

(६)

त्याग सङ्ग-फल करें कर्म को, उचित यही पांचालीकान्त;
ऐसा ही है मेरा निश्चय, अनुभव सिद्ध श्रेष्ठ सिद्धान्त ।

सङ्ग-फल=कर्म के साथ लगाव रखकर और कर्म-फल की आशा करके।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥७॥

(७)

अर्जुन ! नहीं उचित होता है, करना नित्य-कर्म का त्याग;
मोह विवश जो तज देते हैं, है उनका वह तामस-त्याग ।

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्याग फलं लभेत् ॥८॥

(८)

करें कर्म-त्याग दुःखों से, देह-क्लेश भय से हो क्लांत;
राजस-त्याग वही, पाता है, नहीं त्याग-फल कभी नितांत ।

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ।
सङ्गंत्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ॥९॥

(९)

सङ्ग और फल त्याग करें जो, नियत कर्म ही में अनुराग;
"करने योग्य कर्म है" समझें, वह कहलाता सात्त्विक-त्याग ।

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥१०॥

(१०)

द्वेष-रहित अकुशल कर्मों में, कुशल-कर्म-अनुराग-विहीन;
संशय त्यागी, सत्त्वशील है, त्यागी मेधावी मति पीन ।

क्लांत=ऊब कर, थक कर । नितांत=सर्वथा, एक दम ।
मेधावी=बुद्धिमान, पंडित, चतुर ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥११॥

(११)

देहवन्त जग में कर सकते—सब कर्मों से नहीं विराग;
अतः वही त्यागी जो करता, केवल कर्म-फलों का त्याग ।

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् ॥१२॥

(१२)

मिश्रित, इष्ट, अनिष्ट-कर्म-फल, मर कर सब अत्यागी-वृंन्द-
-पाते हैं, त्यागी रहते हैं, उन से रहित और निर्द्वंद ।

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥१३॥

(१३)

सिद्धि-निमित्त सकल कर्मों के, कारण पाँच सांख्य-सिद्धांत;
कहे गए हैं उन को मुझ से, सुनिए अब पांचाली कान्त ।

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ॥१४॥

मिश्रित=मिला हुआ अर्थात् पुण्य पाप से मिश्रित मनुष्य योनि का पाना ।
इष्ट=अनुकूल जैसे:-स्वर्ग, इन्द्रादि देवताओं की श्रेणी को पाना ।
अनिष्ट=प्रतिकूल जैसे:-नरक योनि को पाना ।
अत्यागी=सकामी तथा आसक्त ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

(१४)

अधिष्ठान, कर्त्ता कारण है, करण, चेष्टा एवम् दैव;
सिद्धि निमित्त कर्म के होते, पाँचों कारण यही सदैव।

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः।
न्याय्यं वा विपरीतं पञ्चैते तस्य हेतवः ॥१५॥

(१५)

शरीर, मन, वाणी से जो नर, करैं कार्य्य आरम्भ समस्त;
अर्जुन! है निमित्त उनके यह, पाँच करण ही सतत प्रशस्त।

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥१६॥

(१६)

ऐसा होने पर भी जो नर, आत्मा को कर्त्ता का रूप—
—देकर, देखे वह दुर्मति है देखे निज विपरीत स्वरूप।

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥१७॥

(१७)

भाव अहंकृत-हीन और जो, है निर्लिप्त बुद्धि से युक्त;
नहीं बँधै वह, लोक नष्ट कर, स्वयम् रहै होकर ही मुक्त।

अधिष्ठान=इच्छा, द्वेष, दुःख सुख, चेतना इत्यादि धर्मों का आश्रय रूप।
कर्त्ता=कर्म करने के भाव वाला अहङ्कार।
करण=श्रोत्रादि=पाँच कर्मेन्द्रियाँ पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और मन अर्थात् ११।
चेष्टा=प्राणों की नाना क्रियाएँ।
दैव=शरीर, चक्षुरादिक इन्द्रियों तथा पाँचों प्राणों के प्रकाशक।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥१८॥

(१८)

ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञाता इस विधि हैं, कर्म-प्रेरणा तीन प्रकार;
करण, कर्म, कर्त्ता ये तीनों, करैं कर्म-संग्रह-निर्धार ।

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः ।
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ॥१६॥

(१९)

ज्ञान, कर्म, कर्त्ता को जैसा, सांख्य शास्त्र में किया विचार;
अर्जुन ! मैं तुम से कहता हूँ, उन के गुण भेदों का सार ।

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥२०॥

(२०)

सब विभक्त भूतों में मेरा, अविभक्त अविनाशी भाव;
जो नर देखे उसे जानिए, अर्जुन ! सात्त्विक-ज्ञान-प्रभाव ।

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् ।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥२१॥

(२१)

भिन्न भिन्न नाना भावों को, पृथक् पृथक् रूप का ज्ञान;
सब भूतों में देखे उनका, राजस-ज्ञान सुनो मतिमान ।

सांख्य शास्त्र=कपिल मुनि कृत सांख्य शास्त्र ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम् ।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ॥२२॥

(२२)

युक्ति रहित, आसक्त अर्थवत्, केवल एक कार्य्य में युक्त;
मिथ्या, अर्थ समान तुच्छ वे, होते तामस-ज्ञान-प्रयुक्त ।

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम् ।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥२३॥

(२३)

राग द्वेष, आसक्ति रहित जो, नियत कर्म ही में संलग्न;
त्यागी फलाकांक्षा के नर, सात्त्विक-कर्मों में हों मग्न ।

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः ।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥२४॥

(२४)

फलाकांक्षा, गर्व, कामना, क्लेश सहित जो करते कर्म ;
राजस-कर्म वही कहलाता, पार्थ ! यही इस का है मर्म।

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम् ।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥२५॥

(२५)

पौरुष, क्षय, हिंसा, अनुबन्धों, का जो करते नहीं विचार;
मोह सहित वे करैं कार्य्य को, है वह तामस- कर्म असार ।

नियत कर्म=नित्य नैमित्तिक कर्म, शास्त्र विहित नित्य कर्म ।
गर्व=अहंकार । पौरुष=पुरुषार्थ, कर सकने की सामर्थ्य ।
क्षय=शारीरिक बल तथा धनादि का नाश । हिंसा=परपीड़ा ।
अनुबन्धों=भविष्य में होनेवाला अशुभ फल ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारःकर्ता सात्त्विक उच्यते ॥२६॥

(२६)

अनहंवादी, मुक्त संग से, धृति एवम् उत्साह समेत;
निर्विकार हो हानि-लाभ में, सात्त्विक-कर्त्ता बुद्धि निकेत।

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः ॥२७॥

(२७)

हिंसात्मक, लोभी, रागी हो, अशुचि, हर्ष-शोक से युक्त;
कहलाता कर्त्ता राजस जो, फलाकांक्षा से संयुक्त।

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ॥२८॥

(२८)

शठ, द्रोही, अनम्र, आलसी, दीर्घसूत्री, शोक ग्रस्त;
कहलाता कर्त्ता तामस वह, जो असभ्य चंचल चित व्यस्त।

अनहंवादी=जो अहंकार पूर्ण वचन न कहे, जो कर्मों को कर्त्ता मानकर अहंकार न करे। जैसे यह मैं ने किया वह मैं करूँगा।
मुक्त सङ्ग=कर्म फलों के साथ अपना लगाव न रक्खे।
धृति=धैर्य्य। हानि लाभ=सिद्धि असिद्धि में हार जीत में प्राप्ति अप्राप्ति में।
अशुचि=अपवित्र।
दीर्घ सूत्री=थोड़े समय के कार्य्य को टालमटोल करके बहुत समय में भी कठिनता से करने वाला हो। विघ्न बाधाएँ डालने वाला हो।
शोक ग्रस्त=शोक में रहने वाला, निराशा, अप्रसन्न, असंतुष्ट विषाद युक्त।
असभ्य=गँवार, धर्मादिसंस्कारों से रहित।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनंजय ॥२९॥

(२९)

बुद्धि और धृति-भेद हुए जो, गुण-भेदों से तीन प्रकार,
पृथक् पृथक् उन को कहता हूँ, सुन अर्जुन ! उन का अब सार ।

प्रवृत्तिञ्च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥३०॥

(३०)

कार्य्य, अकार्य्य, अभय, भय एवम्, बन्ध और मोक्ष का ज्ञान;
प्रवृत्ति और निवृत्ति सिखावै, बुद्धि सात्त्विक की वह मतिमान ।

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥३१॥

(३१)

धर्म, अधर्म, अकार्य कार्य्य को, जिससे जानै नहीं यथार्थ;
वही बुद्धि कहलाती जग में, बुद्धि-राजसी ही हे पार्थ ! ।

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥३२॥

(३२)

तमावृत्ति से सब बातों को, पुरुष देखते जो विपरीत;
वे अधर्म को धर्म मानते, बुद्धि तामसी की यह रीत ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः ।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥३३॥

(३३)

प्राण, बुद्धि, मन, इन्द्रियादि की, क्रियाएँ हों स्वतः निरुद्ध;
अटल धारणा योग युक्त हो, होती जब सात्त्विक-धृति-शुद्ध ।

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयते ऽर्जुन ।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृति सा पार्थ राजसी ॥३४॥

(३४)

अर्जुन ! फल की इच्छा वाले, जिस धृति से प्रसङ्ग अनुसार;
धर्म, अर्थ, काम को धारैं, राजस-धृति-उसको निर्धार ।

ययास्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च ।
न विमुञ्चतिदुर्मेधा धृतिःसा पार्थ तामसी ॥३५॥

(३५)

स्वप्न,शोक, भय,मद, विषाद को, जिस धृति से जब नर दुर्बुद्धि;
—नहीं त्यागता तब वह पाता, तामस-धृति हे अंतः शुद्धि ।

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ॥३६॥

(३६)

हे भरतर्षभ ! सुनले मुझ से, होता है सुख तीन प्रकार;
दुःख नष्ट कर अभ्यासों से, मिलता है आनन्द अपार ।

धृति=धैर्य ।

३३=धृति का शब्दार्थ तो धैर्य है किन्तु इन श्लोकों में अब धृति का आशय मन के दृढ़ निश्चय से है ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धि प्रसादजम्॥३७॥

(३७)

विषवत हो आरम्भ, अन्त में, होता है जो सुधा समान;
आत्म-बुद्धि-प्रसाद-जनित वह, है सात्त्विक-सुख हे मतिमान।

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुख राजसं स्मृतम् ॥३८॥

(३८)

विषय इन्द्रियों से सम्बधित, होता जो अमृत अनुरूप;
वही अन्त में विष समान हो, राजस-सुख का है यह रूप।

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः ।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥३९॥

(३९)

प्रमाद, निद्रा, आलस से जो, होता सदा यहाँ उत्पन्न;
आदि अन्त में आत्म विमोहन, वह तामस-सुख, बल-सम्पन्न!

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥४०॥

(४०)

पृथिवी, द्यौ, देवों में कोई, नहीं पदार्थ एक भी शेष;
प्रकृति-जनित इन तीन गुणों का, जिस में हुआ नहीं लवलेश।

आत्म-बुद्धि-प्रसाद-जनित=अपनी आत्म-बुद्धि की निर्मलता के कारण जो उत्पन्न होता है।

द्यौ=स्वर्ग, आकाश, देवलोक।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप ।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥४१॥

(४१)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के, निज निज कर्मों के उपयुक्त;
निज स्वभाव उत्पन्न गुणों से, प्रथक् प्रथक् ही हुए विभक्त ।

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥४२॥

(४२)

शम, दम, तप, पवित्रता, क्षमता, सरल स्वभाव ज्ञान, विज्ञान;
ईश्वर पर विश्वास, कर्म ये, विप्र-स्वभाव-जन्य मतिमान ।

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥४३॥

(४३)

रण अपलायन, धैर्य्य, दक्षता, शौर्य्य, तेज, ईश्वरी-स्वभाव;
दान-वीरता ये सातों हैं, क्षत्रिय-जन्य-कर्म के भाव ।

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥४४॥

(४४)

गौरक्षा, कृषि, वाणिज्यों पर, वैश्य स्वभाव-जन्य अधिकार;
सेवा रूप कर्म शूद्रों के, स्वाभाविक धर्मों का सार ।

रण अपलायन=युद्ध में पीठ न दिखलाना ।
ईश्वरी-स्वभाव=शासन करने का स्वभाव, प्रभुता प्रकट करने का स्वभाव ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥४५॥

(४५)

उन्हें सिद्धि मिलती जो रहते, निज निज कर्मों में लवलीन;
अर्जुन ! सुनो जिस तरह पाते, सिद्धि स्वकर्मों से मतिपीन ।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥४६॥

(४६)

भूतों की प्रवृत्ति जिससे है, जिससे है यह सब जग व्याप्त;
निज कर्मों से उसे पूज कर, करते मनुज सिद्धि को प्राप्त ।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥४७॥

(४७)

गुण संयुक्त अपर धर्मों से, विगुण-धर्म अपना ही श्रेष्ठ;
निज स्वभाव से करें कर्म जो, नहीं पाप पाते मतिज्येष्ठ ।

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ॥४८॥

(४८)

नियत-कर्म निज नहीं त्याज्य है, दोषयुक्त भी किसी प्रकार;
कारण धूम्र-अग्निवत होते, दोषावृत सब कर्म अपार ।

विगुण=बिना गुण वाला ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥४९॥

(४९)

आत्मजयी, फल इच्छा त्यागी, निरासक्त-बुद्धि हो आप्त;
सन्यासों से नर कर लेता, कर्म-मुक्ति-सिद्धि को प्राप्त ।

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे ।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥५०॥

(५०)

सिद्धि-प्राप्त-नर ब्रह्मज्ञान को, ज्ञान-परानिष्ठा से युक्त;
कहता हूँ संक्षेप जिस तरह, उसको पा कर होता मुक्त ।

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥५१॥

(५१)

राग-द्वेष, शब्दादि विषय का, जो नर कर देते हैं त्याग;
संयत मन से निज धृति द्वारा, करते शुद्ध-बुद्धि-अनुराग ।

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥५२॥

(५२)

मन, शरीर, वाणी को बस कर, अल्पाहारी-ज्ञान-प्रयुक्त;
होता है एकान्त निवासी, नित्य ध्यान योग से युक्त ।

ज्ञान-परानिष्ठा=ज्ञान की सर्वोपरि अवस्था ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥५३॥

(५३)

ममता, परिग्रह, काम, क्रोध, बल, दर्प, गर्व का त्यागी सन्त;
शांत हुआ, वैराग्याश्रम ले, पाता ब्रह्मरूप वह अन्त ।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥५४॥

(५४)

ब्रह्म-भूत हो जाने पर वह, शोक और आकांक्षा त्याग;
पाता प्रसन्नात्मा मुझ को, सब भूतों में सम अनुराग ।

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः ।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥५५॥

(५५)

परम-भक्ति-तत्व से मुझको, "जैसा जो हूँ" करता दृष्ट;
मुझे जान कर तत्वज्ञान से, मुझ ही में वह करे प्रविष्ट ।

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥५६॥

(५६)

मेरा आश्रित, सब कर्मों को, करता हुआ सतत मतिज्येष्ठ;
मेरे ही प्रसाद से पाता, वह शाश्वत अव्यय पद-श्रेष्ठ ।

दृष्ट=देखता हूँ । प्रसाद=अनुग्रह । अव्यय=विकार से रहित ।
शाश्वत=उत्पत्ति, विनाश रहित होने से नित्य ।
पद-श्रेष्ठ=विष्णु रूप परम पद को प्राप्त करने वाला ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्पर ।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित:सततं भव ॥५७॥

(५७)

बनै परायण, मेरा मुझ को, मन से अर्पण कर सब कर्म;
बुद्धि-योग आश्रय से मुझ में, रख कर नित चित्त-बृत्ति-धर्म ।

मच्चित्त: सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि ॥५८॥

(५८)

मच्चित हो, मेरे प्रसाद से, पार कर सकैगा सब कष्ट;
नहीं सुनैगा अहङ्कार से, तो तू हो जावैगा नष्ट ।

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ॥५९॥

(५९)

"नहीं करूँगा युद्ध" कह रहा, तू यह वचन गर्व-संयुक्त,
झूँठा है यह निश्चय, तुम को, प्रकृति करैगी कर्म-प्रयुक्त ।

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्ध: स्वेन कर्मणा ।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् ॥६०॥

(६०)

युद्ध नहीं करना चाहोगे, होकर यदि तुम मोह-विमूढ़,
तो भी बिवश स्वभाव जन्य से, होना होगा समरारूढ़ ।

चित्त-वृत्ति-धर्म=मच्चित, मुझ ही में अपने मनको लगा ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥६१॥

(६१)

यंत्रारूढ़ प्राणिमात्र में, ईश्वर निज माया से नित्य;
हृदयस्थित हो, सब भूतों से, करा रहा है जग के कृत्य ।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परांशान्तिंस्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥६२॥

(६२)

सर्वभाव से शरण उसी की, अर्जुन ! अब तू करले प्राप्त,
परम शांति स्थान नित्य हो, उस के ही प्रसाद से आप्त !

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥६३॥

(६३)

आत्मज्ञान अत्यंत गुप्त यह, तुम से, मैंने कहा विशिष्ट;
चिंतन कर अब इसे भली बिधि, करो वही जो हो अब इष्ट ।

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥६४॥

(६४)

गुप्त सारभूत वचनों को, फिर भी अब सुनले हे तात ;
प्रीयमाण जान कर तुमसे, तेरे हित की कहता बात ।

स्थान नित्य=परम पद, ब्रह्म धाम । चिंतन=विचार कर । इष्ट=इच्छा हो ।
प्रीयमाण=श्रद्धा और प्रीतिपूर्वक मेरे उपदेश को सुनकर संतुष्ट होने वाले, अति प्रिय ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥६५॥

(६५)

मन से मेरी भक्ति, अर्चना, करौ निरन्तर सहित विवेक;
प्रीयमाण ! मुझ को पाओगे, सत्य-प्रतिज्ञा-मेरी एक।

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥६६॥

(६६)

केवल एक शरण मेरी ले, सब धर्मों से करौ विराग;
सब पापों से मुक्त करूँगा, कर दे सब शोकों का त्याग।

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ॥६७॥

(६७)

इसे नहीं सुनना चाहें जो, हों यदि भक्ति और तप-हीन;
मेरे निन्दक से गीता का, ज्ञान-नहीं कहना मतिपीन।

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥६८॥

(६८)

मेरे भक्तों को जो देते, परम गोप्य गीता का ज्ञान;
परम-भक्ति करके वे निश्चय, मुझ को पाते हैं मतिमान।

अर्चना=पूजन।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥६९॥

(६९)

मुझे प्यार करने वाला है, मनुजों में वह मनुज अनन्य;
उस से बढ़ कर प्रिय कोई भी, नहीं मुझे जग में है अन्य।

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥७०॥

(७०)

धर्म-युक्त-संवाद यही जो, हम दोनों का पढ़ता पार्थ !;
ज्ञान-यज्ञ से मुझ को पूजै, ऐसा मेरा मत निस्स्वार्थ।

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः।
सोऽपिमुक्तःशुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ॥७१॥

(७१)

रहित असूया होकर इसको, सुनते जो नर श्रद्धावन्त;
होकर मुक्त, पुण्य-कर्म के, शुभ लोकों को पाते अन्त।

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय ॥७२॥

(७२)

अर्जुन ! क्या एकाग्र चित्त से, सुना गया तुमसे सब ज्ञान;
हुआ नष्ट क्या अब भी तेरा, महामोह और अज्ञान।

रहित असूया=इस उपदेश को दोष दृष्टि से न देख कर एकाग्र चित्त हो।
पुण्य कर्म के, शुभ-लोकों=उन लोकों को जिनको अश्वमेधादि पुण्य कर्मों के कर्त्ता प्राप्त करते हैं।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

अर्जुनः—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव ॥७३॥

(७३)

किया अनुग्रह रूप-बोध दे, अच्युत ! हुआ मोह भी दूर;
संशय तज प्रभु आज्ञा ही से, कार्य्य करूँगा अब भरपूर ।

संजयः—

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥७४॥

(७४)

अति अद्भुत ऐसा ही मैं ने, रोम-हर्ष-दाता उत्कृष्ट;
कृष्ण-पार्थ-पुण्यात्मा का सब, सुना वहाँ सम्वाद प्रकृष्ट ।

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम् ।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥७५॥

(७५)

व्यास-अनुग्रह से यह मैं ने, परम गोप्य गीता का सार;
योगेश्वर भगवान कृष्ण से, स्वयम् सुना है इसी प्रकार ।

गत=निश्चय ।
रूप बोध=स्मृति, अपने स्वरूप का वास्तविक ज्ञान ।
रोम-हर्ष-दाता=रोमांचकारी, रोमांच करनेवाला । गोप्य=गुप्त ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥७६॥

(७६)

कृष्णार्जुन के सम्वादों को, जो हैं अद्भुत पुण्य-स्वरूप;
बार बार हर्षित होता हूँ, सुमरण करके भारतभूप ! ।

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ।
विस्मयो मे महान्राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः ॥७७॥

(७७)

हरि के अति अद्भुत स्वरूप का, बार बार मैं करके ध्यान;
साश्चर्य हर्षित होता हूँ, पुनः पुनः भारतसंतान ।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥७८॥

(७८)

जहाँ धनुषधारी अर्जुन हैं, योगेश्वर श्री कृष्ण सदेह;
ध्रुव नय, जय, श्री, बृद्धि वहीं हो, मेरे मत से निस्संदेह ।

भारतभूप=धृतराष्ट्र । भारतसंतान=धृतराष्ट्र । ध्रुव नय=अटल नीति ।
जय=शत्रुओं पर विजय । श्री=लक्ष्मी ।
बृद्धि=धन और ऐश्वर्य की बृद्धि, बढ़ना ।

आशय यह है कि जहाँ युक्ति और शक्ति दोनों ही से कार्य्य किया जाता है वहाँ अवश्य सफलता मिलती है और वहीं पर ऋद्धि सिद्धि का निवास होता है इस अंतिम श्लोक में स्पष्ट रूप से भगवान कृष्ण ने संसार को यह कल्याण कारी संदेश दिया है ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२७	१२	निमत्त	निमित्त
३२	६	प्रदुर्भाव	प्रादुर्भाव
३५	१५	अयस्था (	अवस्थाएँ
३६	६	उव की	उस की
३६	१७	माग	मार्ग
३७	१६	रहा ता	रहता
३६	७	पथ	पद्य
४८	१०	पर लौकिक	पारलौकिक
५८	२४	दुष्कमा	दुष्कर्मों
८४	६	सात्यकिश्रा	सात्यकिश्चा
६२	१९	क्षु	क्षुद्रं
१०२	१८	प्रत्यवाम	प्रत्यवाय
११०	१८	मुक्तं	मुक्ति
१२०	१८	रकुवा	रक्खा
१४४	७	तेज	तज
१४६	११	, मानते योगी वृंद	, उसे मानते योगी वृंद
१४८	१२	मुझ अदृष्ट	मुझे अदृष्ट
१४८	१५	जीवो	जीवों
१५७	४	अर्जुन ! मुझे भजते हैं,	अर्जुन ! मुझे सदा भजते हैं
१७३	४	गूढं	गूढ़
१८८	१५	सकता	सका
२१७	१५	मुभ	मुझ
२२७	१२	सत्व रजोगुण के कम होते	सत्व रजोगुण कम होने में
२४७	११	देहधारियों	देहधारियों
२५७	१२	सात्कि	सात्विक

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

ग्रंथकार की अन्य रचनाएँ
(प्रकाशित ग्रंथ)

बुन्देल-वैभव

अथवा

'बुन्देलखण्ड के हिन्दी कवियों का साङ्गोपाङ्ग इतिहास'

का **'प्रथम भाग'** छप चुका है और हाथों हाथ बिक गया है इस में हिन्दी-भाषा की उत्पत्ति का संक्षिप्त इतिहास, हिन्दी कविता और उसके मुख्य अङ्ग, कवि की महत्ता पर लोकमत, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त परिचय, बुन्देलखण्ड के ग्राम्यगीत आदि के भरपूर विवरणों के साथ ही साथ गोस्वामी तुलसीदास बलभद्र मिश्र, महाराजा मधुकुरशाह, कवीन्द्र केशवदास मिश्र, गोविन्द स्वामी, तानसेन, महाराजा बीरबल, हरीराम शुक्ल, राजा टोडरमल, आसकरनदास, रहीम, चतुर्भुज, महाराजा इन्द्रजीतसिंह आदि ४० कवियों के खोजपूर्ण प्रामाणिक चरित्र, टिप्पणियों सहित सुन्दर सुन्दर कविताएँ और अनेक ज्ञातव्य विषयों के विशद वर्णनों के अतिरिक्त श्री सवाई महेन्द्र महाराजा श्री वीरसिंह-देव ओरछा नरेश, गोस्वामी तुलसीदास, कवीन्द्र केशवदास जी, कविवर बिहारीदास जी के तिरङ्गे और आठ अन्य रंगीन चित्र हैं। टाइटिल पृष्ट पर बुन्देलखण्ड के प्राकृतिक और भव्य भाव को प्रगट करता हुआ बढ़िया तिरंगा चित्र है।

छपाई, सफाई, सजधज और गेटअप बहुत ही बढ़िया, पृष्ट संख्या ३०० होते हुए भी मूल्य केवल २॥) लागत मात्र ही है। इस ग्रंथ पर प्राप्त हुई सहस्त्रों में से कुछ सम्मतियाँ देखिए :—

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

Hon'ble Shrimant Pt. G. V. Bewoor Esqr
C. I. E, I. C. S, J. P,
Director General of Posts and Telegraphs
India, Burma, Aden & Ceylon.

I received your book 'बुन्देल-वैभव' and compliment you on the work you have done. I am proud that I have in my department a Scholar with such industry and intelligence. Your work must serve as an inspiration to your readers and I hope you will be able to write more books.

Prof. R. L. TURNER, M. A. Lett. D. M C.
Professor of Sanskrit University of London
Haverbrock Bishop's Stortford Herts.

It is most encouraging to one like myself whose chief interest is the development of the great modern languages of India out of Sanskrit to see such interest being taken in the earlier stages of the modern literature.

R. P. Dewhurst, Esqr I. C. S. (Retired)
M. A, F. R. E. S, M. R. A. S.
Indian Institute Broad Street Oxford.

I find it to be a most interesting book cantaining large amount of attractive and useful matter both prose and verse. It was very kind of you to send me such book and I am very greatful to you. It is a production eminently creditable alike to the author and to the persons responsible for its typography and genera get up.

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

Raibahadur Syt. Pandit Kashinathji Sharma M A. Manager Courts of Words Ajodhya.

The book is another of your valued contribution to the History of Hindi poetry and deserves every encouragement.

श्री० पं० रामगोपालजी मिश्र, बी० एस-सी० एम० आर० ए० एस० डिपुटी कलेक्टर—

It is indeed a very useful and illuminating work and you have raised the status of Bundelkhand to the highest point in the literary world of India, The book must be read by all the lovers of Hindi literature and seekers after knowledge about Bundelkhand. This monumental work would keep your name alive for ever. The get up is nice and the dedication of this work to the greatest living man of Bundelkhand is just appropriate.

साहित्य महारथी आचार्य्य श्री० पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी—

बड़ी अच्छी पुस्तक आपने लिखी. बुन्देलखण्ड के विस्मृत प्राण गौरव को फिर सजीव कर दिया। आपको धन्यवाद और धन्यवाद उन विद्यावत्सल नरेश को जिनकी छत्रच्छाया में ऐसे-ऐसे उद्योग सफल हो रहे हैं।

कवि-सम्राट् साहित्यरत्न श्री० पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध'—

यह एक उल्लेखनीय ग्रन्थ है इसकी भूमिका पाण्डित्यपूर्ण है, इसमें आपकी साहित्यज्ञता का पूर्ण परिचय मिलता है। बुन्देलखण्ड के लुप्त कीर्ति अनेक कवियों को आपकी सुधामयी लेखनी ने नवजीवन प्रदान कर प्रशंसनीय कार्य्य किया है। मुझे ग्रन्थ देखकर बड़ा हर्ष हुआ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

स्व० रायबहादुर डा० बा० हीरालालजी बी. ए., डी. लिट् रिटायर्ड डिपुटी कमिश्नर—

इसका सम्पादन बड़ी योग्यता से किया गया है और मेरी समझ में अत्यन्त प्रशंसनीय है। सजधज चित्ताकर्षक है।

रायबहादुर रावराजा श्री० पं० श्यामविहारीजी मिश्र एम. ए. सभापति हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग—

कवियों के जीवन चरित्र एवं कवित्व-शक्ति की विवेचना करने में द्विवेदीजी ने अच्छा श्रम किया तथा पूर्ण सफलता पाई है, ऐसे ही कविताओं के उदाहरण चुनने में आपने अपनी काव्य पटुता का खासा परिचय दिया है। निदान यह ग्रन्थ-रत्न संग्रह करने योग्य बन पड़ा है और इसके पढ़ जाने से कोई मनुष्य हिन्दी-साहित्य का ज्ञाता माना जा सकेगा।

मेजर श्री० पं० विन्ध्येश्वरीप्रसादजी पाण्डेय बी. ए., एल-एल. बी., एम. आर. ए. एस., एफ. आर. ई. एस. दीवान ओरछा राज्य...

ग्रन्थ को बहुत परिश्रम से निर्माण कर हिन्दी भाषा की और विशेषकर बुन्देलखण्ड की ऐसी चिरस्थायी सेवा की है जो सर्वथा सराहनीय है।

रायबहादुर श्री० पं० चम्पारामजी मिश्र बी. ए. दीवान छतरपुर राज्य...

मुझे विश्वास है कि आपके अकथ परिश्रम के फल स्वरूप 'बुन्देल-वैभव' हिन्दी साहित्य में चिरस्थायी स्थान प्राप्त करेगा।

कविवर श्री० बा० मैथिलीशरणजी गुप्त चिरगाँव, झाँसी...

द्विवेदीजी ने जो कठिन कार्य्य किया है उसके लिए साहित्य-प्रेमी उनके कृतज्ञ रहेंगे और बुन्देल-वैभव हिन्दी साहित्य की वैभव वृद्धि करेगा।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

डा० मङ्गलदेवजी शास्त्री, एम. ए., डी. फिल (आक्सन)
यू. पी. ई. एस.
रजिस्ट्रार गवर्नमेंट संस्कृत एगजामिनेशन्स् बनारस...

पुस्तक के भव्यरूप और मनोरंजक विषय, प्रतिपादन प्रणाली को देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई हिन्दी-साहित्य की सम्रृद्धि ऐसी ही पुस्तकों से हो सकती है। आपके परिश्रम के लिए तथा उसमें जो सफलता आपको प्राप्त हुई है उसके लिए भी आपको हार्दिक बधाई है। आशा है हिन्दी जगत् इसका समुचित आदर करेगा।

श्री० पं० भगवन्नारायणजी भार्गव B. A., L-L. B.
Advocate Ex. M. L. C. झाँसी—

आपकी विद्वता, काव्य-शास्त्र के ज्ञान की गम्भीरता और साहित्यान्वेषण शक्ति सराहनीय है, **बुन्देल-वैभव** मेरी तुच्छ सम्मति में एक अद्वितीय ग्रन्थ है।

श्रीमान् राजा खलकसिंहजू देव
अधिपति खनियाधाना राज्य...

प्रस्तुत पुस्तक श्री द्विवेदीजी की अमर कीर्ति के रूप में रहेगी और हमारी मातृभाषा के साहित्य भण्डार का यह एक अमूल्य रत्न होगा। हम बुन्देलखण्ड निवासियों को श्री द्विवेदीजी का कृतज्ञ होना चाहिए। उन्होंने हमारे प्यारे देश के छिपे हुए हीरों को प्रकाश में लाकर इस देश की अभूतपूर्व सेवा की है। अधिक क्या कहें इस महान् कार्य्य के लिए हम श्री द्विवेदीजी की सेवा में श्रद्धाञलि अर्पित करते हैं।

श्री० पं० महेशदत्तजी बाजपेयी बी. ए.—
Supdt. Post Offices Lucknow Div.

बुन्देल वैभव तो एक रत्न ही है जितनी भी इसकी प्रशंसा की जाय

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

थोड़ी है। भूमिका ही में सारा हिन्दी साहित्य का इतिहास भरा पड़ा है...... ऐसी ही पुस्तकों की अब हिन्दी साहित्य में आवश्यकता है......हिन्दी प्रेमी सभी इसके लिए आपके कृतज्ञ हैं।

'सुकवि-सरोज' द्वितीय संस्करण (प्रथम भाग)

महाकवि गोस्वामी तुलसीदास, बलभद्र, केशव, बिहारी, आदि कवियों के खोजपूर्ण जीवन चरित्रों, सरस कविताओं, कवीन्द्र केशव के प्रमाणिक वंश वृक्ष के सहित। भूमिका में अनेकानेक ज्ञातव्य, विषयों का समावेश है-प्रायः ३०० पृष्ट और कितने ही चित्र होते हुए भी मूल्य केवल २) लागत मात्र है।

'सुकवि-सरोज' (द्वितीय भाग)

५८ कवियों के खोज पूर्ण जीवन-चरित्रों, सुन्दर कविताओं, टिप्पणियों और गोस्वामी तुलसीदासजी के तिरंगे तथा बारह इकरंगे चित्रों सहित बढ़िया मोटा कागज गङ्गा-फाइन आर्ट प्रेस की सुन्दर छपाई तथा ४०० पृष्ट होते हुए भी मूल्य लागत मात्र २॥) सजिल्द का ३) ग्रन्थ कितनी ही परीक्षाओं में हो गया है।

आचार्य श्री० पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी ने इसके लिए लिखा है कि

'सुकवि-सरोज' के द्वितीय भाग ने मुझे मोह लिया, पुस्तक अनमोल है, वह तो एक रत्न है, उससे बुन्देलखण्ड की कीर्ति कलानिधि की कलाएँ और भी अधिक चमक उठेंगीं।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

सावित्री—सत्यवान	(कविता)	।)
पद्य—प्रभाकर	(कविता)	।)
रामायण के कुछ उपदेश	(कविता)	=)
शिवताण्डव स्तोत्र	(कविता)	-)

(अप्रकाशित)

बुन्देल—वैभव (पाँच भाग) सचित्र, सटिप्पण और

		सजिल्द	३)	प्रत्येक	भाग
सुकवि--सरोज (तीन भाग)	,,	,,	२॥)	,,	,,
हमारे-महापुरुष (तीन भाग)	,,	,,	२॥)	,,	,,
केशव--ग्रंथावली (तीन भाग)	,,	,,	२)	,,	,,
तुलसी--केशव	,,	,,	२)		
दुर्योधन--दमन (कविता)	,,	,,	॥)		
अश्वमेध--यज्ञ (कविता)	,,	,,	॥)		

इन के अतिरिक्त हमारे यहाँ अन्य प्रकाशकों की भी पुस्तकें मिलती हैं। पत्र व्यवहार कीजिए।

व्यवस्थापक

बुन्देल—वैभव—ग्रंथमाला

टीकमगढ़ (बुन्देलखण्ड)

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri